पशुधन प्रकाश

अष्टम् अंक

भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा)

पशुधन प्रकाश

अष्टम् अंक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा) भारत

2017

पशुधन प्रकाश

अष्टम् अंक
ISSN 0976-4569

संरक्षक एवं प्रकाशक
आर्जव शर्मा, निदेशक

मुख्य सम्पादक
अनिल कुमार मिश्र

सम्पादक मण्डल
मनीषी मुकेश
रेखा शर्मा
साकेत कुमार निरंजन
सोनिका अहलावत
सतपाल

© भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

अंक-8 (वर्ष-2017)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए विचार तथा आंकड़े लेखकों के अपने हैं, इसके लिए संपादक मंडल, प्रकाशक अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक
एरोन मीडिया
यू.एफ.-17, सुपर माल, सेक्टर-12, करनाल
फोन न. : 0184-4043026, 98964-33225, ई-मेल : aaronmedia1@gmail.com

भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल – 132 001 (हरियाणा)

ICAR-NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES

Post Box - 129, KARNAL - 132 001 (Haryana)

डा. आर्जव शर्मा

निदेशक

Dr. Arjava Sharma

Director

निदेशक की कलम से ....

हमारा देश अनेकता में एकता का एक उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय उदहारण है। देश के विभिन्न प्रान्तों के किसानों एवं पशुपालकों को एक कड़ी में जोड़ने का कार्य राजभाषा हिंदी के माध्यम से ही सम्भव है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल अपने अधिदेश सम्बंधी शोध कार्यो के साथ- साथ राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं इसके राजकीय कार्यो में अधिकाधिक प्रयोग हेतु हमेशा से प्रयासरत है। पालतू पशुओं की नस्लों के पंजीकरण हेतु यह देश की अग्रणी संस्था रही है। इस हेतु संस्थान की अहम् भूमिका के कारण ही आज देश में पालतू पशुओं की 168 नस्लें पंजीकृत की जा चुकी हैं। संस्थान का राजभाषा प्रकोष्ठ पशुपालन सम्बन्धी तकनीकी ज्ञान किसानों तक पंहुचाने में अहम् भूमिका निभा रहा है। ''मेरा गाँव मेरा गौरव'' कार्यक्रम द्वारा सीधे किसानों को पशुओं की नई नस्लों एवं नवीन तकनीकों की जानकारी हिंदी में प्रदान की जा रही है। इसी क्रम में ब्यूरो द्वारा वार्षिक हिंदी पत्रिका ''पशुधन प्रकाश'' का प्रकाशन वर्ष 2009 में आरम्भ किया गया था जिसके माध्यम से पशुपालन सम्बंधी विभिन्न गतिविधियों एवं तकनीकियों का संकलन किया जाता रहा है, जो कि किसानों द्वारा वैज्ञानिक विधि से पशुपालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका ''पशुधन प्रकाश'' का नवीन अष्टम् अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुऐ मुझे हर्ष एवं गर्व की अनुभूति हो रही है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों में देश के विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के लेखकों, संस्थान के वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों का योगदान प्रशंसनीय है। आप लोगों के सहयोग से ही प्रकाशित लेखों में निरन्तर गुणात्मक सुधार हो रहा है। इस अंक में 28 लेखों को सम्मिलित किया गया है जो कि देश की कम ज्ञात देशी पालतू पशु नस्लों, पशु प्रबंधन, पशु स्वास्थ्य, चारा प्रबंधन आदि से सम्बंधित हैं। मेरा विश्वास है कि प्रकाशित लेख, पशुपालकों, किसानों, पशुपालन से जुड़े वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए ज्ञानवर्धक एवं लाभप्रद होंगे। मैं पत्रिका के प्रकाशन हेतु प्रकाशक मंडल के सभी सदस्यों एवं विभिन्न लेखकों को हृदय से बधाई देता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पत्रिका में गुणात्मक सुधार के लिए आपके सुझावों एवं आलोचनाओं का स्वागत है।

मैं ''पशुधन प्रकाश'' के सुनहरे एवं स्वर्णिम भविष्य की कामना करता हूँ।

(आर्जव शर्मा)

भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल – 132 001 (हरियाणा)
ICAR-NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box - 129, KARNAL - 132 001 (Haryana)

सम्पादकीय

''नए भारत की भाषा हिंदी है, हर जन की भाषा हिंदी है''

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल विगत तीन दशकों से देशी पालतू पशुधन एवं कुक्कुट संसाधनों की पहचान, मूल्यांकन, लक्षणीकरण, संरक्षण एवं उनके सतत् उपयोग से सम्बंधित सभी क्षेत्रों में शोध कार्य में संलग्न है। ब्यूरो इनसे सम्बंधित नवीनतम अनुसंधानों तथा तकनीकों को पशुपालकों, ग्रामीण शिल्पकारों एवं विकास से सम्बंधित कार्यकर्ताओं को स्थानातरित करने में महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। अद्यतन नवीनतम अनुसंधानों एवं तकनीकों को किसानों एवं पशुपालकों के बीच सरल एवं सुगम रूप से उपलब्ध कराने में राजभाषा हिंदी का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् एवं इसके सभी संस्थान किसानों एवं पशुपालकों के कल्याण के लिए सतत् समर्पित हैं लेकिन हमारा प्रयास तभी सफल एवं सार्थक होगा जब हम उनको अपने शोध कार्यो को सरल हिन्दी भाषा में ही जानकारी उपलब्ध कराएं। संस्थान द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका का प्रकाशन उसी प्रयास की एक कड़ी है।

संस्थान द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका ''पशुधन प्रकाश'' का नवीन अंक आशा एवं उत्साह के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में देश में पायी जाने वाली कम ज्ञात पालतू पशुओं की नई नस्लों जैसे कि गाय की बद्री एवं लद्दाखी, भेंड की चितरंगी, बकरी की नागालैंड बकरी एवं बतीसी, याक की हिमालयन याक के साथ ही भैंस की भदावरी एवं भेंड़ की नव विकसित बहुप्रजनक नस्ल अविशान का सारगर्भित वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त किसानोपयोगी पशु पालन की अन्य विधाओं से सम्बंधित ज्ञानवर्धक लेख भी इस अंक में शामिल किये गये हैं।

पत्रिका के प्रकाशन में विभिन्न प्रान्तों के हिंदी प्रेमी सहयोगी लेखकों, संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग सराहनीय रहा है। हम सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों तथा सभी लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं एवं भविष्य में भी आपके सहयोग के आकांक्षी हैं। हम संस्थान के फोटो ग्राफी एवं प्रदर्शनी इकाई को छाया चित्रों के लिए एवं डा. करण वीर को मुखपृष्ठ के छाया चित्र के लिए धन्यवाद देते हैं। पत्रिका के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती गयी है, लेकिन त्रुटि की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। पाठकगण इसमें कोई त्रुटि देखें तो वे अवश्य ही अपनी टिप्पणी व्यक्त करेंगे ऐसा हमारा विश्वास है, ताकि आगामी अंकों में उसे सुधारा जा सके। यह पत्रिका आपकी है एवं हमें आगामी अंक के लिए आपके लेखों एवं सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। हमें आशा है कि यह अंक आपके लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय रहेगा।

सम्पादक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्र सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	**बद्री : उत्तराखण्ड की एक नई गो-नस्ल** आर के पुंडीर, पी के सिंह, नील कान्त, सी वी सिंह, बी प्रकाश एवं अनिल कुमार मिश्र	1
2.	**लद्दाखी गाय : लद्दाख की एक अनमोल गो-सम्पदा** मोनिका सोढ़ी, मनीषी मुकेश, प्रवेश कुमारी, रणजीत सिंह कटारिया, राकेश कुमार पुंडीर, प्रीति वर्मा, अंकिता शर्मा, विजय के भारती, शैलेश कुमार स्वामी, अरूप गिरी, प्रभात कुमार, दीपक गगोई एवं भुवनेश कुमार	6
3.	**भदावरी भैंस संरक्षण एवं सुधार** बद्री प्रसाद कुशवाहा, सुल्तान सिंह, एस बी मैती, के के सिंह, असीम कुमार मिश्रा एवं इन्द्रजीत सिंह	11
4.	**चितरंगी: भारत के उत्तर- पश्चिमी क्षेत्र में पायी जाने वाली भेड़ का मूल्यांकन एवं अध्ययन** अनिल कुमार मिश्र, आनंद जैन एवं संजीव सिंह	18
5.	**बहुप्रजनक अविशान भेंड़ - एक वरदान** वेद प्रकाश, आर सी शर्मा, एल एल एल प्रिंस, अरूण कुमार एवं एस एम के नकवी	22
6.	**नागालैंड की लम्बे बालों वाली बकरियों का शारीरिक लक्षण, प्रबंधन व उपयोग** नरेश कुमार वर्मा	28
7.	**बतीसी : दुधारू बकरी की नई नस्ल** मनोज कुमार सिंह एवं नवीन कुमार	33
8.	**कड़कनाथ मुर्गी पालन : एक लघु पूंजी उद्योग** मोहन सिंह, के मुखर्जी, दीप्ति किरण बरवा, केशर परवीन एवं प्रीति एक्का	36
9.	**भारतीय हिमालयन याक** करण वीर सिंह एवं एस जयकुमार	39
10.	**पशुओं में जीनोमिक चयन: एक विवेचना** गोपाल गोवाने एवं एल एल एल प्रिंस	42
11.	**ग्लोबल वार्मिंग एवं देशी पशुधन-संसाधन** बीरबल सिंह, गोरख मल, मोनिका सोढ़ी, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश	44
12.	**बिना संसर्ग के जीव का जन्म** रवि रंजन, एस डी खर्चे एवं अनुज कुमार सिंह सिकरवार	48
13.	**समेकित कृषि : सतत् आजीविका के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प** सोनिका अहलावत, नेहा, रेखा शर्मा, रीना अरोड़ा एवं एम एस टाँटिया	50
14.	**भारत में गोधन का महत्त्व** शालू कुमार, हरेन्द्र सिंह चौहान, आर जी बुरटे, बी जी देसाई, आर के पुंडीर, पी एस डांगी, एस पी यादव, डी एस साहू एवं जवाहर लाल कुलदीप	56

15.	**राष्ट्रीय विकास में बकरी पालन का सहयोग** उमेश कुमार शुक्ल	59
16.	**पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों में बकरी पालन के लिए नस्ल का चुनाव एवं प्रबंधन** मनोज कुमार सिंह, सोविक पाल, नवीन कुमार एवं अनुपम कृष्ण दीक्षित	62
17.	**पशुओं में पुनः गर्भाधान (रिपीट ब्रीडर) : समस्या एवं समाधान** सत्यनिधि शुक्ला एवं अभिषेक बिसेन	66
18.	**शूकर पालन : एक लाभकारी व्यवसाय** उमा कांत वर्मा, अजीत सिंह, नदीम शाह एवं विकास वोहरा	68
19.	**भैंसों में प्रजनन की प्रमुख समस्यायें एवं उनका समाधान** एस एन शुक्ला, कृष्ण कुमार एवं प्रत्यूष कुमार गुप्ता	71
20.	**बकरी प्रजनन में नये आयाम एवं दिशाएं** साकेत भूषण	75
21.	**चम्बल में बकरी पालनः रोजगार का बेहतर विकल्प** सत्येन्द्र पाल सिंह	78
22.	**गर्भाशय में ऐंठन लगनाः कारण एवं निवारण** संजय कुमार एवं अतुल सक्सेना	84
23.	**गोशाला में रोग नियंत्रण हेतु प्रभावी सफाई एवं विसंक्रमण** करम चन्द, दीपक उपाध्याय, चन्द्रकांता जाना, अमोल गुरव एवं एस के बिश्वास	86
24.	**किलनी संक्रमण से दुधारू पशुओं का बचाव** करण वीर सिंह, विकास वोहरा, अवनीश कुमार एवं मनीषी मुकेश	89
25.	**अपारम्परिक पशु आहारः कुशल डेयरी उत्पादन के लिए सस्ते पोषक संसाधन** ललित कुमार मौर्या एवं एस के साहा	91
26.	**जेर का अटकनाः एक गम्भीर प्रसवोत्तर जटिलता** उमर दीन, नीरज श्रीवास्तव एवं मेघा पांडे	93
27.	**साइलेज- अनावृष्टि में पशुओं के लिए एक पौष्टिक आहार** शालू कुमार, आर जी बुरटे, हरेन्द्र सिंह चौहान, बी जी देसाई, आर के पुंडीर, पी एस डांगी एवं डी जे भगत	96
28.	**भेड़-बकरियों के लिए हरे चारे की खेती** भैंरू लाल कुम्हार, अनिल कुमार शर्मा, सीमा जाट एवं गणेश बी शेन्डगें	99

बद्री : उत्तराखण्ड की एक नई गो-नस्ल

आर के पुंडीर[1], पी के सिंह[1], नील कान्त[2], सी वी सिंह[3], बी प्रकाश[4] एवं अनिल कुमार मिश्र[1]

[1] भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001
[2] कृषि विज्ञान केंद्र , जगधार, उखीमठ
[3] गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय, पंतनगर-263145
[4] भाकृअनुप - केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, मेरठ -250001

भारत विशाल पशु सम्पदा एवं विविधता से समृद्ध देश है। देश के कुल पशुधन (51.2 करोड़) में गोवंशीय पशुओं की संख्या सर्वाधिक (19.1 करोड़) है, जोकि कुल पालतू पशुओं का 37.2 % है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक ससांधन ब्यूरो, करनाल द्वारा वर्ष 2008 में नस्ल पंजीकरण का कार्य शुरू किया गया। शुरूआत में देशी गाय की ज्ञात नस्लों का पंजीकरण किया गया, इसके बाद देश में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त आवेदन के फलस्वरूप विगत 9 वर्षो में 10 नई गो नस्लों का पंजीकरण किया गया, जिससे वर्तमान में कुल पंजीकृत भारतीय गो - नस्लों की सख्या 41 हो गयी है। नई पंजीकृत नस्लें बिन्झारपुरी, घुमसुरी, मोटू, खेरिआर, पुल्लीकुलम, मलनाड गिड्डा, कोसली, बेलाही, गंगातीरी, बद्री एवं लखीमी हैं। कठिन जलवायु परिस्थितियों में जीवन निर्वहन, अपेक्षाकृत निम्न गुणवत्ता वाले आहार एवं चारे पर उत्पादन की योग्यता, रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता इत्यादि गुणों के कारण कई पीढ़ियों में इन देशी नस्लों का विकास हुआ है। इस लेख मे नई पंजीकृत नस्लों में से एक महत्वपूर्ण नस्ल बद्री का विवरण दिया जा रहा है।

बद्री गाय : एक परिचय

बद्री उत्तराखण्ड राज्य की एकमात्र पंजीकृत गोवंशी नस्ल है जिसका पंजीकरण वर्ष 2016 में हुआ है , जोकि ऊँची पहाड़ियों की परिस्थितियों के अनुकूलित है। यह देश की चालीसवीं पंजीकृत गाय की नस्ल है जिसकी पंजीकरण संख्या INDIA_CATTLE_2400_BADRI_03040 है। बद्री गाय को उत्तरा एवं पहाड़ी गाय के नाम से भी जाना जाता है। इस नस्ल का नाम पवित्र तीर्थस्थल बद्रीनाथ के कारण पड़ा है। यह गाय स्वभाव से सीधी एवं शांत होती है। पहाड़ी क्षेत्र में इस गाय को केवल चराई पर ही पाला जाता है, जिसमें पहाड़ी जड़ी बूटियों की बहुतायत होती है। अत: इसके दूध की स्थानीय निवासियो में काफी मांग रहती है। यह पहाड़ी क्षेत्र की परिस्थितियों में चराई हेतु अभ्यस्त है। बद्री गाय के अध्ययन के लिए उत्तराखण्ड के पांच जिलों अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, रूद्रप्रग्राग, चमोली एवं गोपेश्वर के 32 गाँवों का सर्वेक्षण एवं 309 किसानों का साक्षात्कार किया गया। इस हेतु पूर्व निर्धारित प्रश्नावली के आधार पर बद्री गायों के प्रबंधन एवं उत्पादन सम्बंधी सूचनाएँ एकत्रित की गयीं। इन गायों के भौतिक लक्षणों का अध्ययन 819 पशुओं पर किया गया, जोकि विभिन्न आयु एवं लिंग के थे।

भौगोलिक वितरण एवं उपयोगिता

यह नस्ल उत्तराखण्ड के पहाड़ी जिलों में पाई जाती है। इनकी अनुमानित संख्या लगभग 15 लाख है। उत्तराखण्ड के मैदानी इलाकों में तथा हरिद्वार में साहीवाल तथा हरियाणा नस्ल भी पायी जाती हैं। लेकिन पहाड़ी जिलों में केवल पहाड़ी गाय ही पायी जाती है। यह नस्ल उत्तराखण्ड राज्य के रूदप्रयाग, चमोली, उत्तरकाशी, पिथौरागढ़, बागेश्वर, अल्मोड़ा, नैनीताल, पौड़ी एवं चम्पावत जिलों में मुख्य रूप से कुमाँयू एवं गढ़वाली लोगों द्वारा पाली जाती है। चम्पावत जिले के गोवंशी प्रजनन फॉर्म पर भी इस नस्ल की गायें रखी गयी हैं। यह गाय मुख्य रूप से दूध, कृषि कार्य एवं खाद के लिए उपयोगी है।

शारीरिक विशेषताएं

बद्री गाय के शरीर आवरण का रंग भूरा, काला, सफेद एवं धूसर या इनका मिश्रण होता है। कुमांयू क्षेत्र में भूरे एवं काले रंग की गायों की सख्या लगभग बराबर है, लेकिन गढ़वाल क्षेत्र में काले रंग का अनुपात अधिक है। शरीर आवरण के रंगों की विभिन्नता कुमांयू क्षेत्र में गढ़वाल क्षेत्र की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। गढ़वाल क्षेत्र में 75 प्रतिशत शुद्ध काले रंग एवं सफेद रंग की गायें पाई जाती हैं। इनके शरीर का आकार छोटा एवं पैर लम्बे तथा शरीर बेलनाकार होता है। इनकी आँखो की पलकों का रंग काला तथा खुर एवं थूथन का रंग काला अथवा भूरा होता है। त्वचा कसावट लिए होती है। गलकम्बल एवं कूबड़ छोटे आकार के तथा चेहरे का आकार छोटा एवं हल्का सा अवतल होता है। इनके कान छोटे से मध्यम

बद्री गाय

बद्री नर

बद्री गाय के अयन

आकार की लम्बाई के होते हैं जोकि खड़े एवं क्षैतिज होते हैं; जबकि गर्दन छोटी एवं पतली होती है। सींग आकार में छोटे, काले एवं भूरे रंग के ऊपर की तरफ घुमाव लिए होते हैं जोकि बाद में अन्दर की तरफ घुमाव लिए होते हैं एवं इनका अन्तिम सिरा नुकीला होता है। सींग की औसत लम्बाई वयस्क नर में 10 से 22 सेमी एवं गायों में 15 से 25 सेमी होती है। इन गायों के थन की लम्बाई छोटी (6 से 12 सेमी) होती है एवं अधिकांश (78%) गायों में इनका आकार बेलनाकार एवं कुछ गायों में कीप के आकार का होता है। थन का अंतिम सिरा या तो गोल (67%) होता है या कीप (26%) के आकार का होता है। बद्री गायों की पूँछ लम्बी होती है, जोकि कई गायों में जमीन तक पहुंचती है। पूँछ का अन्तिम सिरा 81% पशुओं में काले, 12% में भूरे एवं 7% में सफेद रंग का होता है।

बद्री गोवंशी पशुओं की विभिन्न शारीरिक मापों को तालिका 1 में दर्शाया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि बद्री गोवंशी पशुओं की लम्बाई, उँचाई एवं हृत घेरा साहीवाल,कांकरेज, हरियाणा एवं बरगुर नस्ल से कम एवं वेचूर एवं पुन्गानूर नस्ल के आस पास होता है (पुंडीर एवं अहलावत 2007)। जन्म के समय नवजात बछियों का वजन लगभग 16 (15 से 18) किग्रा होता है एवं बछड़ों का औसत शारीरिक भार लगभग 17 किग्रा होता है।

प्रबंधन

बद्री गायों को कुमांयू क्षेत्र में मुख्यत: चराई आधारित प्रबंधन प्रणाली एवं गढ़वाली क्षेत्र में अर्ध-सघन पद्धति में पाला जाता है। किसान

तालिका 1. वयस्क गायों का शारीरिक माप (सेमी)

उम्र	क्षेत्र	लम्बाई	ऊंचाई	सीने की परिधि	पेट परिधि	पूँछ की लम्बाई
नर (1-3 वर्ष)	कुमांयू	79.61	82.80	99.15	106.73	56.92
	गढ़वाल	77.02	81.53	100.90	102.62	57.62
मादा (1-3 वर्ष)	कुमांयू	79.41	82.02	103.63	104.24	54.14
	गढ़वाल	78.08	81.16	99.21	102.80	56.78
गाय	कुमांयू	98.78	96.54	127.10	137.30	71.61
	गढ़वाल	93.63	93.75	122.41	129.62	67.25
बैल	कुमांयू	105.65	104.14	139.16	146.49	76.18
	गढ़वाल	97.34	100.50	131.83	135.30	71.51
सांड़	कुमांयू	101.41	103.91	138.41	137.58	77.33
	गढ़वाल	98.20	98.60	132.60	131.00	68.80

स्रोत: पुंडीर एवं अन्य (2013)

बद्री गाय की आवास व्यवस्था

पूर्णत: स्थानीय उपलब्ध खाद्य पदार्थों तथा पेड़ों की पत्तियों एवं स्वत: उगी हुई घासों पर ही निर्भर होता है। पशु पालक चारे की फसल नहीं उगाते हैं। पशुपालन से सम्बधित सभी कार्य घर की महिलाएं ही करती हैं। पहाड़ी क्षेत्र में विभिन्न किसान 25 से 50 पशुओं को एक साथ एकत्रित करके पानी के स्रोत के आस-पास चराते हैं। गढ़वाल क्षेत्र में इन्हें पालने का मुख्य उद्देश्य दूध की प्राप्ति है, जबकि कूमांयू क्षेत्र में इसे कृषि कार्य हेतु भी पाला जाता है। लगभग 48 प्रतिशत किसान बद्री गायों को दूध एवं कृषि दोनों के लिए पालते हैं। चराई के साथ-साथ दुधारू गायों एवं कार्य के समय बैलों को शाम के समय चारे एवं दाने की थोड़ी मात्रा भी दी जाती है। पशुओं को केवल रात्रि के समय ही घर पर रखा जाता है। कुमांयू क्षेत्र में इनके रहने के आवास अधिकांश किसानों (84%) के निवास का ही हिस्सा होते हैं, जबकि गढ़वाल क्षेत्र के अधिकतर किसान (73%) इनके लिए अलग से पशु आवास का निर्माण करते हैं। लगभग 68% पशुओं के लिए रहने के घर खुले एवं कच्चे होते हैं। पक्के घरों की सख्ंया कुमांयू क्षेत्र की अपेक्षा गढ़वाल क्षेत्र में अधिक है। जल निकासी की व्यवस्था समुचित नहीं होती है, लेकिन अधिकतर जगहों पर संवातन एवं पेड़ों की छांव पायी जाती है।

उत्पादित दूध का अधिकांश हिस्सा घर के उपयोग में ही प्रयोग किया जाता है। पशुओं के झुण्ड का आकार कुमांयू क्षेत्र में 2 से 5 जबकि गढ़वाल में यह 5 से 25 तक होता है। इन गायों में किसान द्वारा पेट के कीड़े मारने वाली दवाई नहीं पिलाई जाती है। कुछ किसानों द्वारा गल घोंटू, ब्लैक क्वार्टर एवं खुरपका-मुँहपका रोग नियंत्रण हेतु टीका लगवाया जाता है। अध्ययन में यह पाया गया कि गढ़वाल क्षेत्र में इन गायों का प्रबंधन एवं देखभाल कुंमायू क्षेत्र की अपेक्षा बेहतर होता है।

इनमें प्रजनन मुख्यत: नैसर्गिक ढंग से होता है। बद्री बछड़े लगभग 3.5 वर्ष की आयु में वयस्क एवं प्रजनन के योग्य हो जाते हैं एवं गायों की प्रथम ब्यांत पर उम्र लगभग 4 वर्ष (42 से 56 माह) होती है। इनका ब्यांत अंतराल लगभग 13 महीने का होता है तथा ये अपने 12 से 15 वर्ष के जीवन काल में 8-10 संततियों को जन्म दे देती हैं।

उत्पादन

बद्री गायों का प्रतिदिन औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 1.12 किग्रा है, लेकिन कुछ गायें 6.9 किग्रा तक दूध का उत्पादन करती हैं। इनका दुग्ध काल 275 दिनों का होता है। गढ़वाली क्षेत्र की गायों का प्रतिदिन का औसत दुग्ध उत्पादन कुमायूं क्षेत्र की गायों की अपेक्षा सार्थक रूप से अधिक पाया गया क्योंकि गढ़वाल क्षेत्र के पशुपालक इनके प्रबंधन एवं खान - पान की व्यवस्था बेहतर तरीके से करते हैं एवं वे इन्हें दूध उत्पादन के लिए ही पालते हैं। अध्ययन से स्पष्ट है कि कुछ गायों में अच्छे दुग्ध उत्पादन की अच्छी क्षमता है, जिनका प्रयोग आनुवंशिक सुधार हेतु किया जा सकता है। इनका प्रथम ब्यांत में कुल दुग्ध उत्पादन लगभग 613 किग्रा (242 दिनों के दुग्ध काल में) होता है जोकि 502 से 639 किग्रा तक हो सकता है। इनके दूध में औसत वसा एवं वसा रहित ठोस पदार्थों का प्रतिशत क्रमश: 4.1 एवं 8.62 होता है। बद्री बैलों को वर्ष में 30 से 45 दिनों तक विभिन्न कृषि क्रियायों में प्रयोग किया जाता है। एक जोड़ी बैल एक दिन में लगभग 0.5 एकड़ खेत की जुताई कर लेता है।

बद्री गाय उत्तराखण्ड राज्य की एकमात्र पंजीकृत गाय की नस्ल है, जोकि दूध एवं खेती के कार्य हेतु उपयुक्त है एवं कठिन पहाड़ियो में चरने हेतु अभ्यस्त है। यह स्थानीय लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है एवं इनके आनुवंशिक सुधार की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

पुंडीर आर के एवं अहलावत एस पी एस. 2007. इंडीजीनस ब्रीड्स ऑफ कैटल एंड बुफैलो, डेरी इंडिया ईयर बुक, छठा संस्करण, पृष्ठ : 261- 271।

पुंडीर आर के, सिंह पी के, नीलकांत, शर्मा डी, सिंह सी वी एवं प्रकाश बी. 2013. उत्तरा - ए न्यू जर्मप्लाज्म फ्राम उत्तराखंड हिल्स, इन्डियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेस, 83 : 51- 58।

लद्दाखी गाय : लद्दाख की एक अनमोल गोसम्पदा

मोनिका सोढ़ी[1], मनीषी मुकेश[1], प्रवेश कुमारी[1], रणजीत सिंह कटारिया[1], राकेश कुमार पुंडीर[1], प्रीति वर्मा[1], अंकिता शर्मा[1], विजय के भारती[2], शैलेश कुमार स्वामी[2], अरूप गिरी[2], प्रभात कुमार[2], दीपक गगोई[2] एवं भुवनेश कुमार[2]

[1]भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल -132001
[2]उच्च तुंगता रक्षा अनुसंधान संस्थान, लेह, जम्मू एवं कश्मीर-194101

लद्दाख जिसे 'ऊँचे दर्रो की भूमि' के नाम से जाना जाता है, देश का सबसे ठंडा एवं शुष्क क्षेत्र है जो भारत के जम्मू एवं कश्मीर प्रान्त में हिमालय और काराकोरम पर्वत के बीच में स्थित है। यह विश्व के उच्चतम क्षेत्र में से एक है जिसकी ऊँचाई ज्यादातर 11000 फीट (3350 मीटर) से ऊपर है, अत: यहाँ की जलवायु अत्यंत विषम है। सर्दियों में यहां का तापमान -20 से -35 डिग्री सेल्सियस तक होता है तथा इस क्षेत्र का अधिकतर भाग साल में कई महीनों तक बर्फ से ढ़का रहता है। वर्षा कम होने के कारण लद्दाख में गर्मियाँ छोटी व शुष्क किन्तु सुहानी होती हैं। गर्मियों में यहां का तापमान 3 से 35 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है। अधिक ऊँचाई होने के कारण यहाँ पर आक्सीजन की मात्रा समुद्रतल से 30 से 50 प्रतिशत तक कम होती है। लद्दाख का कुल क्षेत्रफल 45,110 वर्ग किलोमीटर है तथा प्रति वर्ग किलोमीटर 3 व्यक्ति रहते हैं। लेह और कारगिल लद्दाख के दो जिले हैं। लद्दाख क्षेत्र में जौ, गेहूं, दाल, सरसों और बाजरा प्रमुख फसलें हैं, जो गर्मियों के 4-5 महीनों में ही उगाई जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ जगहों पर खुमानी, सेब, अखरोट, नाशपाती और आड़ू की खेती भी होती है। ऐसे ठंडे शुष्क इलाके में भूमि एवं कृषि ससांधन कम होने से पशुधन यहां के स्थानीय लोगों के जीवनयापन व रोजगार का एक उत्तम माध्यम है एवं यहां के स्थानीय लोगों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

लद्दाख में पशुपालन की महत्ता

गाय, याक, बकरी, भेड़, घोड़े, दो कूबड वाले ऊँट आदि पालतू पशु यहाँ के पशुधन में विशेष रूप से शामिल हैं। पशुधन जो कि सैकड़ों सालों से लद्दाख के लोगों द्वारा पाले जा रहे हैं, यहां की अत्यंत कठोर एवं शुष्क जलवायु स्थितियों में पाले जाने के लिए विकसित और अच्छी तरह से अनुकूलित हैं। लद्दाख के ठंडे शुष्क रेगिस्तान और कठोर परिस्थितियों के बावजूद यहाँ पशु पालन, विशेष रूप से गौपालन महत्वपूर्ण है। गौपालन लद्दाख के स्थानीय लोगों के लिए दूध, दुग्ध उत्पाद व आय का मुख्य स्रोत है।

लद्दाख में गोवंश

लद्दाख में लगभग 96 हजार गोवंश हैं, जिसमें 54 हजार देशी एवं 42 हजार संकर हैं। लद्दाखी गाय लेह जिले के सभी 9 ब्लाकों-दुरबुक, खलसी, सापोल, खारू, लेह, चुचोट, नुब्रा, पनामिक एवं न्योमा में पाई जाती है। इस गोवंश को समाज के लगभग सभी वर्ग के लोग पालते हैं तथा अधिकतर परिवारो में 2 से 5 गाय पाली जाती हैं। देशी गाय के साथ लेह व आस पास के क्षेत्र में जर्सी एवं होल्स्टीन फ्रीजियन की संकरित गायें भी पाई जाती हैं। इसके अलावा लेह क्षेत्र में गाय व याक का संकर 'जो' और 'जोमो' भी पाये जाते हैं। नर (जो) जुताई और सामान परिवहन के लिए प्रयोग किया जाता है तथा मादा (जोमो) दूध उत्पादन में काम आती

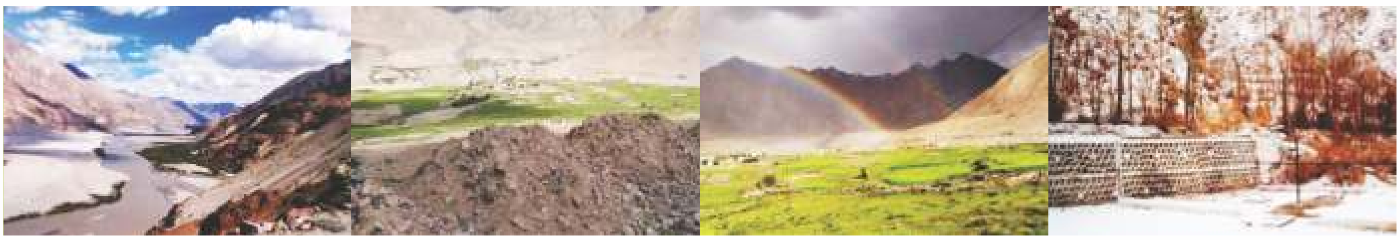

लद्दाख के दुर्गम क्षेत्र एवं विषम परिस्थितियाँ

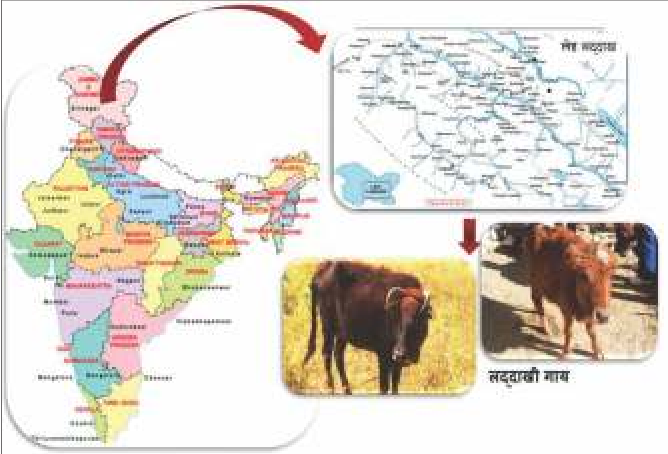

लद्दाखी गाय का वितरण

हैं। जोमो लगभग 5-6 किलोग्राम दूध प्रतिदिन देने में सक्षम हैं, और इससे यहाँ औसत दूध उत्पादन में बढोतरी हुई है। किन्तु इस संकरण से याक प्रजाति के पशुओं की संख्या में कमी आती जा रही है।

विदेशी व संकर नस्लों की गाय में दूध की मात्रा चाहे देशी नस्ल से अधिक होती है किन्तु लद्दाख के कठिन, कम ऑक्सीजन व कम तापमान वाले वातावरण में इन संकर गायों की सामान्य गतिविधियाँ बाधित होती हैं। विदेशी नस्लों को भारी मात्रा में चारे की भी आवश्यकता होती है जो यहाँ आसानी से नहीं मिलता एवं इन पशुओं में रोग से लड़ने की प्रतिकारी क्षमता भी स्थानीय गोवंश से कम होती है।

शारीरिक विशेषताएं

लद्दाखी गाय छोटे आकार की होती है जिसकी ऊँचाई लगभग 90 सेमी है। इनका कूबड़ व गलकम्बल छोटा होता है तथा कान मध्यम आकार के होते हैं। पूँछ लम्बी तथा कभी-कभी जमीन को छूती हुई होती है। लद्दाखी गाय अत्यंत ही शांत स्वभाव की होती है। इसके शरीर का रंग काला या भूरा होता है तथा शरीर पर चमकदार लम्बे एवं घने बाल होते हैं। लद्दाखी गाय के सिर पर सफेद रंग के धब्बे भी पाए जाते हैं। इसकी त्वचा मोटी और ढ़ीली होती है। सींग मध्यम आकार के ऊपर और बाहर की तरफ मुड़े हुए होते हैं। इसके थन छोटे और गोल होते हैं।

प्रजनन

लद्दाखी गाय प्राय: 4 वर्ष की आयु में पहला बच्चा देती है हालांकि इसके बाद यह लगभग हर वर्ष प्रसव करती है तथा अपने जीवन काल में 8 से 10 बार बच्चा देती है। इसका दुग्धकाल अधिकतर 10 महीनों से ऊपर पाया जाता है। नर सांड़ लगभग 4 साल की आयु में प्रजनन के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

लद्दाखी गाय की शारीरिक विशेषताएं

तालिका 1. लद्दाखी गाय के औसत शारीरिक माप (सेमी)

गुण (सेमी)	लिंग	<1वर्ष	1-3 वर्ष	3-5 वर्ष	>5 वर्ष
शरीर की लम्बाई	नर	55.05±2.71	74.97±2.01	87.67±5.57	
	मादा	54.83±3.24	70.11±2.37	84.65±1.02	88.48±0.56
छाती की चौड़ाई	नर	48.15±6.00	101.29±3.08	122.80±7.19	
	मादा	40.83±8.41	85.56±7.07	84.65±1.02	88.48±0.56
शरीर की ऊँचाई	नर	63.68±2.46	80.49±1.04	93.17±4.38	
	मादा	64.68±3.22	82.33±1.86	89.81±0.89	91.27±0.41
कमर की चौड़ाई	नर	36.70±6.29	103.86±3.60	118.50±8.44	
	मादा	42.17±8.39	79.89±6.93	103.19±7.76	109.39±3.44
चेहरे की लम्बाई	नर	23.57±1.37	32.29±1.23	36.50±1.78	
	मादा	24.00±1.06	31.22±1.19	34.27±0.83	35.90±0.38
चेहरे की चौड़ाई	नर	10.66±0.47	14.14±0.26	16.40±0.55	
	मादा	9.67±0.67	13.22±0.38	14.39±0.26	14.89±0.13
पूंछ की लम्बाई	नर	44.40±3.33	76.14±3.68	91.20±5.33	
	मादा	43.33±5.37	77.72±3.72	83.20±1.79	85.09±1.09
सींग की लम्बाई	नर	3.25±0.75	8.00±0.26	16.00±1.46	
	मादा	2.00±0.0	8.03±1.14	11.21±0.68	14.83±0.50
कान की लम्बाई	नर	11.97±0.45	12.69±0.63	15.17±0.95	
	मादा	11.83±0.48	12.53±0.38	13.38±0.28	14.21±0.15

पशुओं का आवास एवं पोषण

गर्मियों में पशुओं के रहने का आवास खुला और सर्दियों में ईंट से निर्मित और बंद प्रकार का होता है। बंद आवास ठंढ़ से बचने के लिए उपयुक्त होता है, हालांकि इनमें स्वच्छता के अभाव में त्वचा सम्बंधी रोग भी प्रायः देखे गए हैं। लद्दाखी गाय का पोषण अधिकतर चराई पर आधारित होता है। सर्दियों के लिए विभिन्न प्रकार की घास विशेषतौर पर अल्फा-अल्फा सुखा कर रखी जाती हैं। दूध देने वाले तथा गर्भित पशु को गेहूं या जौ का भूसा एवं चोकर (आटा) भी दिया जाता है। इसके अतिरिक्त आटा-चावल-कच्ची सब्जी का बना हुआ 'थुचु'' भी दिया जाता है।

दुग्ध उत्पादन

लद्दाखी गाय प्रतिदिन लगभग 2 से 5 किग्रा तक दूध देती है। कठिन जलवायु परिस्थितियों, खराब गुणवत्ता वाले चारे और पानी की कम उपलब्धता पर निर्वाह के बावजूद यह लगभग 2-5 किग्रा दूध प्रतिदिन प्रदान करती है और इस प्रकार स्थानीय लोगों के लिए खासकर शीतकालीन अवधि के दौरान एक महत्वपूर्ण पशु प्रोटीन स्त्रोत है। कुछ लद्दाखी गायों से 6 किग्रा से भी अधिक दूध उत्पादन देखा गया है जोकि अच्छे रख-रखाव व पोषण के कारण हो सकता है। दूध सुबह-शाम दो बार निकाला जाता है। इनका दुग्ध काल 10 महीने से अधिक ही देखा गया है। लद्दाखी गाय से हमें उच्च गुणवत्ता वाला दूध मिलता है जिसमें वसा की मात्रा अधिक होती है। लद्दाखी गाय के दूध में पाई गई ए2 अलील की आवृति विदेशी नस्लों में उपस्थित ए2 अलील के मुकाबले अधिक व मूल्यवान है जो यह संकेत करती है कि लद्दाखी गाय का दूध मानव उपयोग के लिए सुरक्षित है।। लद्दाखी गाय का न केवल दूध उपयोगी है बल्कि इसका मूत्र एवं गोबर भी प्राकृतिक संसाधनो को सुरक्षित रखने में सहायक है। गोबर का उपयोग उत्तम गुणों वाली प्राकृतिक खाद के रूप में, आग तापने व भोजन पकाने में किया जाता है।

चुरपी/मक्खन

चुरपी दूध से प्राप्त एक ऐसा पारंपरिक किस्म का पनीर है जो मुख्य रूप से हिमालयी क्षेत्रों में गाय और याक के दूध से तैयार किया जाता है। यह प्रोटीन एवं वसा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थों में किया जाता है जो विशेष रूप से ठंड में राहतकारी होता है। गाय के दूध से बनी चुरपी याक के दूध से बनी

लद्दाखी गाय का आहारः थुचु

अल्फा-अल्फा घास का संचय

चुरपी की तुलना में अधिक नरम व स्वादिष्ट होती है तथा इसका इस्तेमाल स्थानीय निवासी अपने दैनिक खान-पान जैसे कि मिक्स करी अचार और मसालों में करते हैं।

लद्दाखी गोवंश का आनुवंशिक लक्षण और विविधता विश्लेषण

एफ. ए. ओ. द्वारा गौजातीय माईक्रोसैटेलाईट चिन्हको (मार्कर) का उपयोग लद्दाखी गौ नस्लों के 50 पशुओं को जीनोटाइप करने के लिए किया गया। लद्दाखी गायों में नस्ल विभिन्नता सम्बंधित विभिन्न मापदंड जैसे कि अलील की संख्या व प्रभावी संख्या (एन.ओ एवं एन ई); हेट्रो जायगोसिटी व अपेक्षित हेट्रोजायगोसिटी (एच ओ एवं एच ई) तथा हेट्रोजायगोट डेफिसेट क्रमशः 9.79±0.44 व 4.73±0.69; 0.749±0.014 व 0.788±0.068 तथा 0.072±0.059 पाए गए। माईक्रोसैटेलाईट से लद्दाखी गौ पशुओं में पर्याप्त आनुवंशिक विविधता देखी गई। फाईलोजेनेटिक विश्लेषण से लद्दाखी गोपशुओं की अन्य भारतीय गौ नस्लों के मुकाबले आनुवंशिक विशिष्टता का भी पता लगाया गया। लद्दाखी गोनस्ल को साहीवाल के निकट पाया गया। इसी तरह राजस्थान की राठी व थारपारकर नस्ल में निकटतम

सम्बंध पाया गया तथा कांकरेज व गिर नस्ल भी एक ही समूह में पायी गयी। फाईलो जेनेटिक विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि बॉस टॉरस नस्लें (होलस्टीन फ्रीजियन व जर्सी) भारतीय नस्लों से बिलकुल अलग थीं।

लद्दाखी गौवंश में माइटोकॉंड्रियल विविधता को जानने हेतु 40 विभिन्न पशुओं के डीएनए का इस्तेमाल किया गया। लद्दाखी पशुओं के माइटोकॉंड्रियल संबंधित टुकड़े में कुल 15 हैप्लोटाईप पाए गए तथा हैप्लोटाईपिक विविधता 0.942±0.002 थी। लद्दाखी पशुओं में पायी गयी न्यूक्लियोटाईड विविधता और युग्मक न्यूक्लियोटाईड अंतर क्रमशः 0.004 और 3.459 था। डेमोग्राफी सूचकांक के अंतर्गत लद्दाखी पशुओं और अन्य भारतीय गो नस्लों के तुलनात्मक अध्ययन में कोई महत्वपूर्ण विविधता नहीं पायी गयी। इसके अतिरिक्त लद्दाखी पशुओं में प्रर्याप्त एम टी डी एन ए हेप्लोटाइपिक विविधता के अस्तित्व को दर्शाता है।

उच्च तुगंता पर लद्दाखी गाय की विशेषता

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल और उच्च तुंगता रक्षा अनुसंधान संस्थान (दिहार) के वैज्ञानिकों ने अपने संयुक्त प्रयास से उच्च तुंगता के लिए अनुकूलित नस्लों व गरम जलवायु में अनुकूलित नस्लों में हाइपॉक्सिया से सम्बंधित जीन्स का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में यह भी देखा गया कि उच्च तुंगता के वातावरण में रहने वाली गाय में संकर नस्ल के मुकाबले में ऑक्सीडेटिव तनाव के खिलाफ एंटीऑक्सीडेंटस की अभिव्यक्ति ज्यादा पायी जाती है जो यह संकेत करता है कि लद्दाखी गाय विदेशी नस्लों की तुलना में वहां के कठोर पर्यावरण में अधिक अनुकूलित एवं सक्षम है।

अनुशंषा

लद्दाखी गाय ऊँचाई, कम ऑक्सीजन, शून्य से नीचे तापमान वाले क्षेत्र के लिए उत्तम रूप से अनुकूलित होने के साथ ए2 दूध का एक उत्कृष्ट संसाधन है। ठंडी जलवायु की परिस्थितियों में लद्दाखी गाय का दूध प्रोटीन का एक उत्तम स्रोत है, जोकि लद्दाखियों को ठंड से सुरक्षा प्रदान करता है। अधिक दूध पाने हेतु बहुउपयोगी लद्दाखी गाय को विदेशी नस्लों से संकरित किया जा रहा है जिससे देशी पशुओं की संख्या लगातार घटती जा रही है। अच्छे पोषण की कमी के बावजूद भी लद्दाखी गाय पर्याप्त मात्रा में दूध देती है, अत: यदि इसे अच्छा खान-पान व उचित रख रखाव दिया जाये तो यह और अधिक दूध देने में भी सक्षम है, साथ ही साथ यह यहाँ के पर्यावरण के लिए भी पूर्णतया अनुकूलित है। लद्दाखी गाय के आनुवंशिक सुधार हेतु विशेष कार्यक्रम लागू किये जाने तथा अच्छे किस्म के लद्दाखी सांड़ उत्पन्न करने के लिए न्यूक्लियस बुल मदर फार्म खोले जाने की आवश्यकता है। लद्दाखी गाय स्थानीय लोगों की जीवनरेखा है अर्थात् लद्दाखी गाय यहां की अर्थव्यस्था की रीढ़ की हड्डी है। अत: आवश्यकता है इसके संरक्षण की तथा इस नस्ल को पहचान देने की जिसके लिए इसको पंजीकृत करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए राजकीय पशु पालन विभाग, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो व उच्च तुंगता रक्षा अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक संयुक्त रूप से कार्यरत हैं।

भदावरी भैंस संरक्षण एवं सुधार

बद्री प्रसाद कुशवाहा[1], सुल्तान सिंह[2], एस बी मैती[2], के के सिंह[2], असीम कुमार मिश्रा[2] एवं इन्द्रजीत सिंह[1]

भदवारी नस्ल संरक्षण एवं सुधार नेटवर्क परियोजना, भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी -284003

[1]भाकृअनुप-केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार -125001

[2]भाकृअनुप- भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी-284 003

हमारे देश में भैंसों की तेरह प्रमुख नस्लें हैं, भदावरी इन्हीं में से एक महत्वपूर्ण नस्ल है जो उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के भदावर क्षेत्र में यमुना तथा चम्बल नदी के आस-पास के क्षेत्रों में पायी जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा इस नस्ल का पंजीकरण कर इसे भारतीय महिषवंश की तृतीय नस्ल के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। इसको क्रमांक INDIA_ BUFFALO_ 2010_ BHADAWARI_01003 प्रदान किया गया है। यह नस्ल दूध में अधिक घी/वसा प्रतिशत के लिए प्रसिद्ध है। भदावरी भैंस के दूध में औसतन 8.5 प्रतिशत वसा पायी जाती है जो इस नस्ल की अलग – अलग भैंसों में एवं दुग्ध काल की विभिन्न अवस्थाओं में 7 से 14 प्रतिशत तक हो सकती है। भदावरी क्षेत्र के गावों में यह कहा जाता है कि इस भैंस के आठ- दस दिन के दूध से एक दिन के दूध की मात्रा के बराबर घी निकलता है, अर्थात प्रतिदिन 7 किग्रा दूध देने वाली भैंस से आठ-दस दिन में 7 किग्रा घी निकलेगा जोकि 10 से 12.5 प्रतिशत के बराबर है। भदावरी भैंस के दूध में वसा का प्रतिशत देश में पायी जाने वाली भैंस की किसी भी नस्ल से अधिक होता है। दूध में वसा प्रतिशत अधिक होने के अतिरिक्त भदावरी भैंस के दूध का स्वाद/मीठापन, अन्य किसी भी नस्ल की भैंस से अच्छा है।

प्रजनन क्षेत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इटावा, आगरा, भिण्ड, मुरैना तथा ग्वालियर जनपदों के कुछ हिस्सों को मिलाकर एक छोटा सा राज्य था जिसे भदावर कहते थे। भैंस की यह नस्ल भदावर क्षेत्र में ही विकसित हुई और इसीलिए इसका नाम भदावरी पड़ा। वर्तमान में इस नस्ल की भैंस आगरा की बाह तहसील, भिण्ड के भिण्ड तथा अटेर तहसील, इटावा (वढ़पुरा, चकरनगर) औरैया तथा जालौन जिलों में यमुना तथा चम्बल नदी के आस-पास के क्षेत्रों में पायी जाती है। ललितपुर तथा झाँसी जनपदों में भी इस नस्ल के जानवर पाये जाते हैं हालांकि यहां उनकी संख्या काफी कम है।

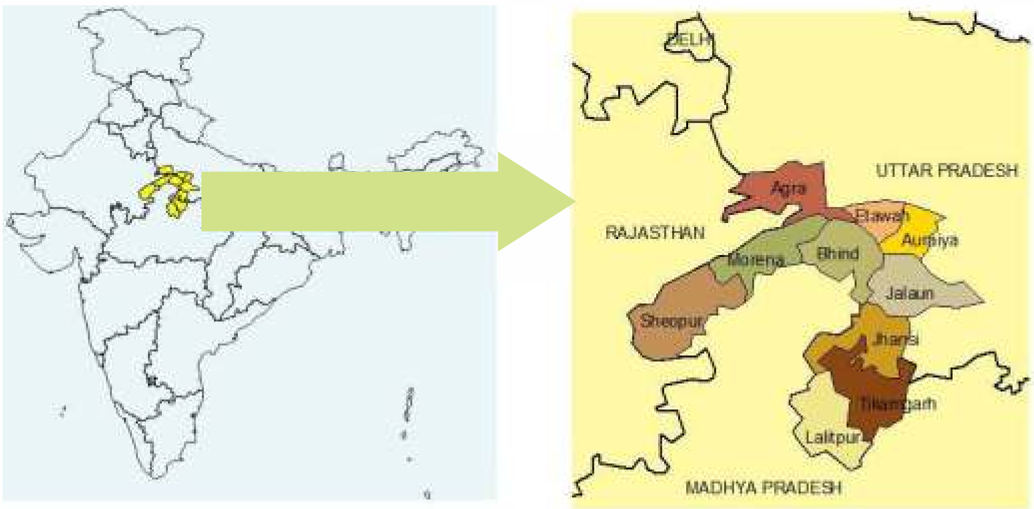

भदावरी भैंस का प्रजनन क्षेत्र

भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी में भदावरी भैंसों का झुंड

विगत कई वर्षो से भदावरी भैंसों की संख्या लगातार घट रही है, इसका प्रमुख कारण क्षेत्र में भदावरी नस्ल के सांड़ो का अभाव तथा कृषकों का मुर्रा नस्ल की तरफ झुकाव है। उत्तर प्रदेश सरकार की सन 1991 की रिपोर्ट के अनुसार सन् 1977 से 1991 के बीच उत्तर प्रदेश में भैंसों की संख्या में 30.9 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। भदावरी नस्ल के संरक्षण एवं सुधार की नेटवर्क परियोजना के अन्तर्गत वर्ष 2004 से वर्ष 2007 के दौरान इटावा, भिण्ड, मुरैना, झाँसी तथा जालौन जनपदों का सर्वेक्षण किया गया और यह पाया गया कि प्रति गांव भदावरी भैंसों की संख्या औसतन 3 से 4 है। भदावरी भैंसो की संख्या में निरंतर गिरावट चिंता का विषय है। अगर इस नस्ल की भैंसो की संख्या में लगातार गिरावट होती रही तो कुछ वर्षों बाद भदावरी नस्ल के पशुओं का मिलना मुश्किल हो जायेगा। अत: इस समय इस नस्ल के पशुओं के संरक्षण की तथा उनकी संख्या की गिरावट में विराम लगाने एवं आने वाले समय में इनकी संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है। इनके उत्पादन स्तर में सुधार लाने हेतु भैंस सुधार नेटवर्क परियोजना, केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार के सौजन्य से भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी में भदावरी नस्ल के संरक्षण एवं सुधार हेतु उत्तम सांड़ो का विकास किया जा रहा है तथा उनका वीर्य हिमीकृत करके, प्रजनन हेतु कृषकों को उपलब्ध कराया जा रहा है।

भदावरी भैंस की पहचान एवं विशेषताएं

इस नस्ल के पशुओं को गावों में भदावरी, भूरी, जनेऊ वाली तथा सुअरगोड़ी आदि नामों से जाना जाता है। पशुओं का शारीरिक आकार मध्यम, रंग तांबिया तथा शरीर पर बाल कम होते हैं। टागें छोटी तथा मजबूत होती हैं। घुटने से नीचे का हिस्सा हल्के-पीले सफेद रंग का होता है। सिर के अगले हिस्से पर, आँखों के उपर वाला भाग सफेदी लिए हुए होता है। गर्दन के निचले भाग पर दो सफेद धारियां होती हैं जिन्हे कंठ माला या जनेऊ कहते हैं। अयन तथा इसके पास की त्वचा का रंग हल्का गुलाबी होता है। सींग तलवार के आकार के होते हैं। इस नस्ल के वयस्क पशुओं का औसत शरीर भार 300-400 किग्रा होता है। छोटे आकार एवं कम वजन के कारण इसे कम संसाधनों में छोटे किसानों/पशुपालकों, भूमिहीन कृषकों द्वारा आसानी से पाला जा सकता है। इस नस्ल के पशु विषम परिस्थितियों में रहने की क्षमता रखते हैं तथा अति गर्म और आर्द्र जलवायु

भदावरी सांड

भदावरी भैंस

भदावरी नस्ल के बच्चे

में आराम से रह सकते हैं। नर पशु खेती के लिये खासतौर से धान के खेतों में कार्य के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं। इस नस्ल के पशु कई बीमारियों के प्रतिरोधी पाये गये हैं। बच्चों की मृत्यु दर भैंसों की अन्य नस्लों की तुलना में अत्यन्त कम होती है।

दुग्ध उत्पादन

दूध में वसा का अधिक प्रतिशत, विषम परिस्थितियों में रहने की क्षमता तथा तुलनात्मक रूप से कम आहार आवश्यकता आदि गुणों के कारण यह नस्ल किसानों में काफी लोकप्रिय है। भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी में चलित परियोजना के अन्तर्गत भदावरी भैंस के विभिन्न पहलुओं जैसे उनकी भोजन की आवश्यकता, स्वास्थ्य एवं बीमारियां, प्रजनन, दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध संगठन आदि गुणों का विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है। भदावरी भैंस औसतन 5 से 7 किलो दूध प्रतिदिन देती है, लेकिन अच्छे प्रबंधन द्वारा 8 से 10 किलो दूध प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है। संस्थान में भदावरी भैंस से एक दिन में अधिकतम 14 किलो तक दूध प्राप्त किया जा चुका है। भदावरी भैंसों से एक ब्यांत (208 से 300 दिन) में लगभग 1400 से 2000 किग्रा दूध प्राप्त होता है। वर्ष 2001 में नस्ल संरक्षण एवं सुधार हेतु नेटवर्क परियोजना के लिये भदावरी भैंसों की खरीदारी की गयी थी, उस समय खरीदी गयी भैंसों का प्रति ब्यांत औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 1000 किग्रा था जो अब बढ़कर 1450 किग्रा हो गया है। उत्पादन सम्बन्धित आंकड़े तालिका 1 में दिये गये हैं।

भदावरी भैंस के दूध का संगठन

भदावरी भैंस के दूध का औसत संगठन तालिका 2 एवं घी में वसा अम्लों का संगठन तालिका 3 में दिया गया है।

पोषक तत्व उपयोग क्षमता

छोटे आकार तथा कम शरीर भार की वजह से इनकी आहार आवश्यकता भैंसो की अन्य नस्लों (मुख्यतया मुर्रा, नीली-रावी, जाफराबादी, मेहसाना) की तुलना में कम होती है। भदावरी भैंसो की भोजन आवश्यकता, खाद्य परिवर्तन क्षमता के आंकलन संबन्धित

भदावरी नस्ल की पंड़ियां या ओसर

अध्ययन में यह पाया गया कि अर्द्ध-सघन खिलाई पद्धति में भदावरी भैंस का प्रदर्शन मुर्रा की तुलना में बेहतर रहा जबकि सघन खिलाई पद्धति में मुर्रा एवं भदावरी भैंसो का प्रदर्शन तुलनात्मक रहा। विस्तृत आंकड़े तालिका 4 में दिये गये हैं। भदावरी एवं मुर्रा भैंसों को गेंहू का भूसा एवं रातिब युक्त भोजन खिलाकर उनसे होने वाली मीथेन गैस उत्सर्जन का अध्ययन किया गया एवं पाया गया कि भदावरी भैंसों में मीथेन गैस का उत्सर्जन मुर्रा की तुलना में सार्थक रूप से कम था। विस्तृत आंकड़े तालिका 5 में दिये गये हैं।

संरक्षण

भदावरी नस्ल के सुधार एवं संरक्षण के उपाय स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद से ही प्रारंभ कर दिये गये थे । उत्तर प्रदेश सरकार के पशु प्रजनन फार्म भरारी, झाँसी में भदावरी नस्ल की भैंसों को रखा गया था जो वहां पर वर्ष 1965 तक रहीं, इसके पश्चात उनको पशु प्रजनन

तालिका 1. भदावरी भैंस का औसत उत्पादन स्तर

मापदंड	उत्पादन
प्रतिदिन औसत दूध उत्पादन	5-7 किग्रा
प्रति ब्यांत (300 दिन) औसत दूध उत्पादन	1450 ली
ब्यांत की औसत अवधि (गर्भ काल)	302 दिन
दो ब्यांत का अंतर	480 दिन
पहली ब्यांत के समय औसत उम्र	48 महीने
गर्भाधान अंतराल	175 दिन
शुष्क अवधि	200 दिन

तालिका 2. भदावरी भैंस का दुग्ध संघटन

दुग्ध अवयव	मात्रा
वसा	8.26 प्रतिशत
वसा रहित ठोस पदार्थ	9.57 प्रतिशत
प्रोटीन	4.05 प्रतिशत
लैक्टोज	5.23 प्रतिशत
कैल्शियम	205.72 मि.ग्रा./100 मि.ली.
जिंक	3.82 माइक्रोग्राम/मि.ली.
कापर	0.24 माइक्रोग्राम/मि.ली.
मैंगनीज	0.117 माइक्रोग्राम/मि.ली.
फास्फोरस	140.90 मि.ग्रा./100 मि.ली.

तालिका 3. भदावरी भैंस के घी में वसा अम्लों का संघटन

वसा अम्ल	मात्रा (%)
कुल संतृप्त वसा अम्ल	77.3
कुल एकल असंतृप्त वसा अम्ल	21.54
ओमेगा 6 लीनोलेइक अम्ल	0.80
ओमेगा 3 लीनोलेइक अम्ल	0.30

तालिका 4. भदावरी भैंस एवं मुर्रा भैंसों में पोषक तत्व उपयोग क्षमता की तुलना

मापदण्ड	भदावरी भैंस		मुर्रा भैंस	
	बांध कर खिलाना	चराई + संपूरक आहार	बांध कर खिलाना	चराई + संपूरक आहार
पशु का औसत वजन कि.ग्रा.	402.5	401.2	528.33	518.2
भोजन अर्न्तग्रहण कि.ग्रा. प्रतिदिन	7.62	10.33	9.68	12.88
G/Kg w0.75	78.08	112.56	90.23	120.90
भोजन अर्न्तग्रहण शारीरिक वजन %	1.70	2.49	2.0	2.55
पाचकता प्रतिशत				
शुष्क पदार्थ	5.82	60.91	58.44	57.39
कार्बनिक पदार्थ	58.38	62.84	60.57	59.88
क्रूड प्रोटीन	49.86	53.47	51.20	46.13
एन.डी.एफ.	52.23	58.70	55.72	57.53
ए.डी.एफ.	38.57	50.88	42.98	43.74
सेलूलोज	52.30	63.03	59.64	59.25
हेमीसेलूलोज	65.32	59.54	71.48	70.94

तालिका 5. भदावरी एवं मुर्रा भैंसों में मीथेन गैस उत्सर्जन

मापदण्ड	मुर्रा	भदावरी
मीथेन उत्सर्जन (ग्राम/प्रतिदिन)	301.80	183.42
मीथेन उत्सर्जन (ग्राम / प्रति किग्रा शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण)	23.26	21.49
मीथेन उत्सर्जन (ग्राम/प्रति किग्रा पाचक शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण)	41.88	34.96
मीथेन उत्सर्जन (ग्राम/प्रति किग्रा दुग्ध उत्पादन)	49.96	42.78

फार्म सैदपुर, ललितपुर में स्थानान्तरित कर दिया गया। वहां पर भदावरी साड़ों को प्रजनन हेतु गावों में दिया जाता था, जिसके फलस्वरूप आज भी सैदपुर के आसपास के गांवो में भदावरी भैंस उपलब्ध है। वर्ष 1989-90 में सैदपुर से अधिकतर भैंसो को भदावरी भैंस प्रजनन फार्म इटावा भेज दिया गया जहां पर आज भी वे कॉफी संख्या में विद्यमान हैं। वर्ष 2001 में भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी में भदावरी नस्ल के संरक्षण एवं सुधार हेतु नेटवर्क परियोजना का शुभारम्भ किया गया। इस परियोजना के तहत अब तक 40 से अधिक सांड़ो का वितरण विभिन्न संस्थाओं जैसे उ.प्र. पशुधन विकास परिषद लखनऊ, म.प्र. पशुधन एवं कुक्कुट विकास परिषद भोपाल, बैफ, एनीमल ब्रीडिंग सेंटर सलोन (रायबरेली, उ.प्र) पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं गो अनुसंधान संस्थान मथुरा एवं किसानों को किया जा चुका है। जिनका उपयोग प्रजनन एवं वीर्य हिमीकरण हेतु किया जा रहा है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार अब तक 5 लाख से अधिक हिमीकृत वीर्य स्ट्रॉ का उत्पादन किया जा चुका है। लगभग 2 लाख हिमीकृत वीर्य स्ट्रॉ का उपयोग कृत्रिम गर्भाधान हेतु इटावा, आगरा, औरैया एवं बुन्देलखण्ड के विभिन्न जनपदों में किया जा चुका है, परिणामस्वरूप भदावरी भैंस के बच्चों का जन्म हो रहा है एवं भदावरी भैंसों की संख्या का बढ़ना प्रारम्भ हो गयी है। वीर्य हिमीकरण एवं कृत्रिम गर्भाधान का कार्य लगातार जारी है।

निष्कर्ष एवं संस्तुतियां

भदावरी, भैंस की एक उत्तम नस्ल है जो आकार में छोटी एवं कम वजन की होती है, दूध उत्पादन मध्यम एवं दूध में घी की मात्रा अधिक होती है। चारे दाने की आवश्यता मुर्रा भैंस की तुलना में दो तिहाई है। मुर्रा भैंस अपने देश की एक अत्यन्त लोकप्रिय नस्ल है मगर अधिक शारीरिक भार एवं अधिक दुग्ध उत्पादन की वजह से उसकी दाने-चारे की आवश्यकता भी अधिक है, फलस्वरूप मध्यम तथा गरीब किसान इस नस्ल को नहीं पाल पाते और अगर पालते भी हैं तो संसाधनों के अभाव में समुचित उत्पादन नहीं ले पाते हैं। अतः भदावरी भैंस को मध्यम एवं गरीब किसान द्वारा एवं खासतौर से दूरस्थ क्षेत्रों में जहां आवागमन के साधन कम हैं, दूध को बेचने या संरक्षित करने की सुविधायें नहीं हैं, आराम से पाला जा सकता है। गांवो में दूध बेचने की सुविधा न होने पर, दूध से घी निकालकर महीने में एक या दो बार शहर में बेचा जा सकता है। घी एक ऐसा उत्पाद है जिसको बिना खराब हुये वर्षो तक रखा जा सकता है। आज

भदावरी एवं मुर्रा भैंसों में मीथेन गैस उत्सर्जन का अध्ययन

जनपद इटावा में कृत्रिम गर्भाधान द्वारा उत्पन्न बच्चे

जब शुद्ध देशी घी के दाम आसमान छू रहे हैं तब किसान भाई भदावरी भैंसों को पालकर दूध एवं घी बेचकर अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं तथा इस नस्ल के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

आभार

इस अध्ययन के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए लेखकगण निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उत्तर–प्रदेश), निदेशक एवं समन्वयक नेटवर्क परियोजना भैंस सुधार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा) के प्रति अभार प्रकट करते हैं।

पशुधन प्रकाश के नवम अंक (2018) में प्रकाशन हेतु लेख आमंत्रण

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा '**पशुधन प्रकाश**' पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवम् पशु चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशुपालकों, शोधकर्त्ताओं एवम् छात्रों के लिए उपयोगी मौलिक लेख भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के राजभाषा एकक को ए–4 साईज के पन्नों पर टंकित कराकर 31 मार्च, 2018 तक भेज दें। लेख में यदि कोई छायाचित्र है, तब उनकी 'जे.पी.ई.जी.' फाईल लेख के साथ सी.डी. में या ई–मेल द्वारा अवश्य भेजें। लेख ई–मेल द्वारा pashudhanprakash@gmail.com पते पर भी भेजे जा सकते हैं। कृपया सभी लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित निम्न प्रमाण पत्र लेख के साथ अवश्य भेजें:

प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख "(लेख का शीर्षक)", (लेखकों के नाम) द्वारा लिखित एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा शोध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया है।

आपके द्वारा अध्ययन किये गये पालतू पशु/ कुक्कुटों के गैर पंजीकृत समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

– सम्पादक मंडल

चितरंगीः भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में पायी जाने वाली भेड़ का मूल्यांकन एवं अध्ययन

अनिल कुमार मिश्र, आनंद जैन एवं संजीव सिंह

भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001

हमारे देश में पायी जाने वाली कुल भेंड़ों की लगभग 50 प्रतिशत संख्या कम ज्ञात या अवर्णित भेड़ों की है । कम ज्ञात एवं अवर्णित संख्या का अध्ययन कर उन्हें वर्णित करना हमारे संस्थान का मुख्य उद्देश्य है, जिससे कि देश में पाई जाने वाली महत्वपूर्ण भेड़ो को वर्णित कर उनका नई नस्ल के रूप में पंजीकरण किया जा सके एवं उनके विकास के लिए योजनाएं बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा सके। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले की घड़साना मंडी एवं अनूपगढ़ तहसील के सात गांवों का सर्वेक्षण फरवरी माह, 2016 में किया गया। इस सर्वेक्षण के दौरान 17 भेड़ पालकों का साक्षात्कार किया गया एवं कुल 121 वयस्क भेड़ों एवं 91 मेमनों की शारीरिक बनावट एवं भार का अध्ययन किया गया। इसके लिए पूर्व निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य वहां पर पाई जाने वाली कम ज्ञात भेंड़ चितंरगी का अध्ययन करना था।

वितरण एवं उपयोगिता

चितरंगी गलीचा उत्पादन हेतु उपयोगी ऊन वाली भेड़ है जो कि पंजाब के मुक्तसर जिले की फाजिल्का तहसील एवं राजस्थान के श्री गंगानगर जिले एवं इनके आस-पास पायी जाती है। यह भेड़ अच्छी गुणवत्ता वाले गलीचा ऊन, शारीरिक बढ़ोत्तरी एवं वजन के कारण किसानों में काफी लोकप्रिय है। यह भेड़ ''शामकी वाली'' नाम से भी जानी जाती है। किसानों का ऐसा मानना है कि इसे पालने की शुरूआत इसी गांव से हुई है एवं शामकी गाँव से ही यह अन्य जगहों पर फैली है। शामकी गांव के किसानों के बीच यह चितरंगी, रतानी एवं लाल मुहं वाली भेड़ के नाम से जानी जाती है। चित्ताकर्षक रंग के कारण ही इसे चितरंगी कहा जाता है। शामकी गांव, राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले की घड़साना तहसील में स्थित है। सर्वेक्षण के दौरान किए गए अनुमान के अनुसार इन भेड़ों की लगभग 15 से 20 हजार संख्या उपलब्ध है लेकिन वास्तविक संख्या की जानकारी, पशु जनगणना द्वारा ही सम्भव है।

शारीरिक विशेषताएं

शरीर का आकार- प्रकार एवं वजन दर्शाता है कि चितरंगी मध्यम से बड़े आकार वाली भेड़ है। इसका रंग सफेद होता है लेकिन आँखों के चारों तरफ, थूथन पर एवं कान के ऊपर गहरे लाल-भूरे (टैन) रंग के धब्बे पाए जाते हैं। कुछ भेड़ों में यह धब्बे हल्के भूरे एवं चाकलेटी रंग के भी होते हैं। कान आकार में बड़े एवं लटकते हुए होते हैं। इनके कान के अंतिम सिरे पर विभिन्न आकार एवं प्रकार के कटाव पाए जाते हैं जो कि इस नस्ल की मुख्य विशेषता

चितरंगी भेड़

चितरंगी मेढ़ा (नर)

चितरंगी भेड़ के कान की विशेषता

है। इस प्रकार के कटाव अन्य किसी भी भारतीय भेड़ में नहीं पाए जाते। कान की लम्बाई 14 से 23 सेमी होती है। सामान्यतया नर एवं मादा दोनों सींग रहित होते हैं, लेकिन कुछ नरों में सींग का होना पाया गया है। इसका शरीर मजबूत होता है। पूँछ मध्यम आकार (20.56 सेमी) की एवं पतली होती है। मादा भेड़ का अयन मध्यम आकार का होता है। इस नस्ल के वयस्क नर का औसत शरीर भार 55.25 एवं व्यस्क मादा का 46.25 किग्रा होता है। मेमनों का शरीर भार 0-1, 1-3, 3-6 एवं 9-12 माह की आयु वर्ग में क्रमश: 6 से 13, 10 से 28, 15 से 34 एवं 28 से 41 किग्रा पाया गया। इसके शरीर की लम्बाई, ऊँचाई, हृत घेरा, पेट परिधि एवं अन्य शारीरिक मापों को तालिका 1 में दर्शाया गया है। इस भेंड़ के शरीर का अधिकांश भाग ऊन से ढ़का होता है। इसकी ऊन अच्छे गलीचा उत्पादन वाली होती है जो कि ₹80 से 200 प्रति किग्रा की दर से बिकती है। ऊन का औसत वार्षिक उत्पादन प्रति भेड़ लगभग 1.5 से 2.0 किग्रा होता है। ऊन का व्यास, मेडुलेशन प्रतिशत तथा लम्बाई

तालिका 1. वयस्क चितरंगी भेड़ का शरीर भार (किग्रा) एवं शारीरिक माप (सेमी)

गुण		संख्या	शरीर भार	लम्बाई	ऊँचाई	हृत घेरा	पेट परिधि	चेहरे की लम्बाई	चेहरे की चौड़ाई	कान की लम्बाई	पूंछ की लम्बाई
औसत		121	48.05 ±1.10	72.51 ±0.38	72.93 ±0.35	86.88 ±0.58	88.55 ±0.58	20.29 ±0.10	9.69 ±0.06	17.64 ±0.13	20.56 ±0.26
लिंग			**	**	**	*	असा	**	**	असा	*
	नर	24	55.25 ±2.80	76.13 1.05	77.17 ±0.75	89.17 ±1.32	91.17 ±1.46	21.50 ±0.26	10.42 ±0.16	18.04 ±0.38	22.42 ±0.61
	मादा	97	46.25 ±1.10	71.62 ±0.35	71.89 ±0.31	83.32 ±0.63	87.97 ±0.77	19.99 ±0.08	9.51 ±0.06	17.55 ±0.14	20.10 ±0.26
विस्तार	नर		40-95	69-90	71-85	78-102	80-108	20-24	9-12	14-23	18-30
	मादा		26-74	63-79	66-80	73-99	73-105	18-22	8-11	15-21	12-26

*सार्थ 5 प्रतिशत, **सार्थक 1 प्रतिशत, असा-असार्थक

आवास व्यवस्था

क्रमशः 42.22 माइक्रान, 56.60 एवं 5.90 सेमी होती है। इनका थन मध्यम आकार का एवं विकसित होता है।

प्रबंधन

इन भेड़ों को मुख्यतः खुली चारण पद्धति या चराई पद्धति या शून्य लागत प्रणाली पर पाला जाता है। भेड़ों के झुण्ड का आकार औसतन 80.56 (15 से 180) होता है जिसमें 80.44 भेड़ें चितरंगी एवं 0.11 अन्य नस्ल की होती हैं। चितरंगी भेड़ के झुण्ड में औसतन 2.44 नर, 59.06 मादा एवं 18.94 मेमनें होते हैं। अधिकतर किसान भेड़ के साथ-साथ बकरी, गाय, भैंस या मुर्गियों का भी पालन करते हैं। इस भेड़ को पालने वाले किसान मुख्यतः मजबी सिख, अनुसूचित जाति, मेघवाल, कुम्हार, नायक एवं मुस्लिम समुदाय के होते हैं। जिनमें 72 प्रतिशत के पास खेती की जमीन (10 बीघा से 5 एकड़) होती है एवं 78 प्रतिशत किसान शिक्षित होते हैं। भेड़ पालक प्रतिदिन सुबह 9 बजे से सायं 6 बजे (8-10 घंटे) तक भेड़ों

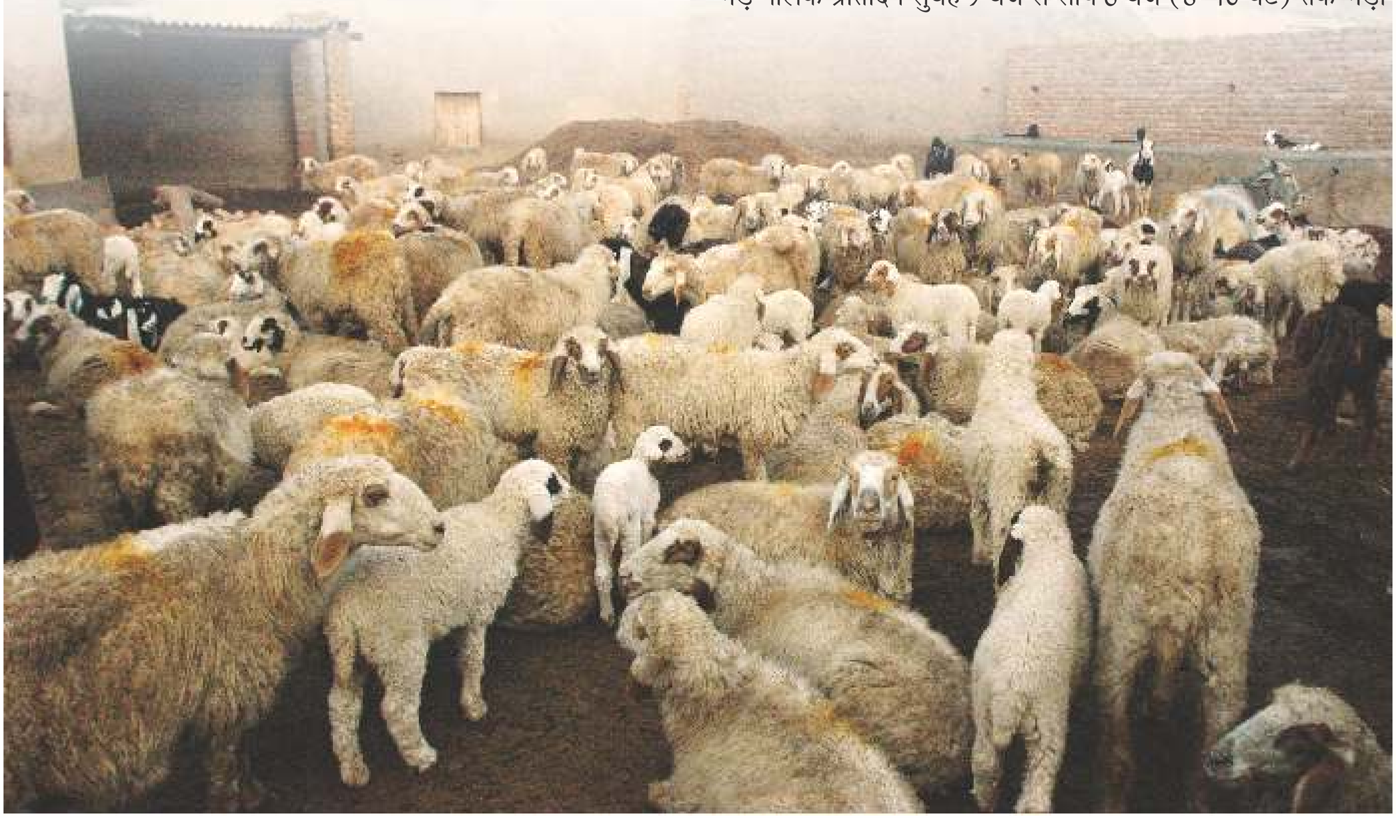

चितरंगी भेंड़ का रेवड़

को चराते हैं तथा इस दौरान 8-10 किमी की यात्रा तय करते हैं। लगभग 94.44 प्रतिशत किसान भेड़ों को अपने आवास से अलग रखने की व्यवस्था करते हैं। इनके रहने के घर आधे खुले प्रकार के होते हैं। भेड़ों के रहने के घर कच्चे एवं पक्के दोनों प्रकार के होते हैं। इनका पोषण मुख्यत: चराई पर ही निर्भर होता है। लेकिन 27.78 प्रतिशत किसान प्रजनन काल, गर्भावस्था एवं अन्य क्रांतिक अवस्थाओं में दाना खिलाते हैं। 22.22 प्रतिशत किसान तो वर्ष भर दाना खिलाते हैं। इसके अलावा 50 प्रतिशत किसान इन भेड़ों को जनवरी से मार्च माह (जब गेहूँ की फसल खेत में होती है) में चारा खिलाते हैं। चारे में ग्वार का भूसा मुख्य होता है।

इन भेड़ों के ऊन की कटाई वर्ष में तीन बार (फरवरी-मार्च, जून-जुलाई, अक्टूबर -नवम्बर) की जाती है। फरवरी-मार्च माह में पैदा हुई ऊन की कीमत सबसे अधिक मिलती है इसके बाद जून-जुलाई एवं फिर अक्टूबर- नवम्बर की ऊन का नंबर आता है। फरवरी-मार्च माह में पैदा हुई ऊन का रंग सफेद एवं शेष अन्य का धूसर होता है। अधिकांश किसानों ने बताया कि 1 से 2 प्रतिशत भेड़ें जुड़वा मेमनों को जन्म देती हैं। जबकि 11.11 प्रतिशत किसानों ने जुड़वा मेमनों का प्रतिशत 10 तक बताया । अधिकांश किसान नर मेमनों को 4 से 6 माह की उम्र में ₹3000 से ₹6000 रूपये में बेच देते हैं लेकिन 1 से 2 मेमनों को प्रजनक नर बनाने के लिए रखते हैं। मादा में दूध की मात्रा लगभग 250 से 500 मिली (90 से 120 दिन में) होती है। लेकिन दूध मेमनों को ही पिला दिया जाता है। अधिकतर किसान इन भेड़ों को 7-8 वर्ष तक पालते हैं, लेकिन कुछ 10 वर्ष से अधिक एवं उनकी नैसर्गिक मृत्यु तक पालते हैं। सभी किसान इनकी मेंगनी को खेती में खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। इन भेड़ों में मुख्य रूप से खुरपका-मुंहपका, गिड, अफरा, माता, न्यूमोनिया आदि बीमारियां होती हैं एवं अधिकांश किसान खुरपका-मुंहपका, भेड़ माता (शीप पॉक्स), एच एस एवं एंटेरोटोक्सीमिया का टीका लगवाते हैं। इसके अलावा पेट के कीड़े मारने की दवा भी पिलाते हैं। सामान्यत: मेमनों में मृत्युदर 5 से 10 प्रतिशत एवं वयस्क में 2 से 5 प्रतिशत होती है।

प्रजनन

चितरंगी रेवड़ की औसत मेमना पैदा करने की दर (लैम्बिंग प्रतिशत) 80-90 प्रतिशत होती है हालांकि 11.11 प्रतिशत किसानों ने इसे 90-95 प्रतिशत भी बताया। इन भेड़ों का मुख्य प्रसव काल फरवरी-मार्च है, लेकिन अक्टूबर-नवम्बर में भी भेड़ें मेमनों को जन्म देती हैं। रेवड़ में औसतन 34.29 मादा पर 1 प्रजनक नर होता है एवं प्रति रेवड़ औसत प्रजनक नरों की संख्या 1.72 होती है। भेड़ पालक प्रजनक नर का चयन शरीर आकार-प्रकार, रंग एवं उनकी माँ के उत्पादन आदि के आधार पर करते हैं। 72.77 प्रतिशत किसानों के अनुसार नर मेमनें 12 माह की उम्र पर प्रजनन योग्य हो जाते हैं एवं मादा 17-18 माह (83.33 प्रतिशत किसानों के अनुसार) में अपने पहले बच्चे को जन्म देती हैं। समागम हेतु नैसर्गिक ढ़ंग का ही प्रयोग किया जाता है। किसान अपने रेवड़ में 2-3 वर्ष तक ही नरों का प्रयोग करते हैं।

अध्ययन से स्पष्ट है कि चितरंगी भेड़ शारीरिक लक्षणों के आधार पर भारतवर्ष की अन्य पंजीकृत नस्लों से भिन्न है। उपलब्ध पुस्तकों एवं पाठ्य सामग्रियों में चितरंगी से सम्बंधित कोई भी सहित्य उपलब्ध नहीं है। अत: इस बहुमूल्य नस्ल का विस्तृत और सुव्यस्थित अध्ययन, संरक्षण, विकास एवं नस्ल पंजीकरण कर इसके विकास के लिए परियोजना का क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है।

आभार

इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु लेखकगण निदेशक भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल का आभार व्यक्त करते हैं। हम पशुपालन विभाग, राजस्थान सरकार, उप-निदेशक श्री गंगानगर, डॉ. अक्षर गोयल, पशु चिकित्सा अधिकारी, घड़साना एवं श्री वेद प्रकाश पूर्णिया, एल एस ए, घड़साना का भी आभार व्यक्त करतें हैं जिन्होंने सर्वेक्षण के दौरान हर सम्भव सहायता प्रदान की । इसके अतिरिक्त हम उन सभी भेंड़ पालकों का भी आभार व्यक्त करते हैं जो कि वर्षों से इस महत्वपूर्ण भेड़ नस्ल को पालते आ रहे हैं।

बहुप्रजनक अविशान भेड़ – एक वरदान

वेद प्रकाश, आर सी शर्मा, एल एल एल प्रिंस, अरूण कुमार एवं एस एम के नकवी

भाकृअनुप- केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर-304501

मनुष्य के उचित शारीरिक एवं बौद्धिक विकास हेतु पौष्टिक आहार अनिवार्य है। जानवरों से प्राप्त होने वाला प्रोटीन पौष्टिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। आज लोगों में पौष्टिक आहार के प्रति जागरूकता बढ़ी है। लोगों ने भोजन में प्रोटीन के महत्व को समझा है। इसके आलावा आर्थिक विकास के साथ-साथ लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया है। खान-पान में भी बदलाव आया है। भारत सरकार के महा रजिस्ट्रार द्वारा जारी 2014 के आंकड़ो के मुताबिक भारत में 70% से ज्यादा आबादी मांसाहारी है। बढ़ती आबादी एवं बढ़ते मांसाहार के प्रति रूझान ने मांस उद्योग में नये अवसर पैदा किये हैं। इसके कारण मांस की माँग एवं आपूर्ति के बीच का अंतर बढ़ा है। भेड़ मांस उद्योग में नई संभावनाएं पैदा हुई हैं लेकिन सीमित चराई के संसाधान एवं कम प्रजनन दर के कारण नये अवसरों का पूरा लाभ नहीं लिया जा सका है। देश में बढ़ती हुई माँस की माँग को भेड़ों में जनन क्षमता बढ़ाकर किसी हद तक पूरा किया जा सकता है। वृद्धि दर की तुलना में प्रजनन दर में आनुवंशिक सुधार से भेड़ों की जैविक एवं आर्थिक क्षमता बढ़ाने की संभावना ज्यादा है। जनन क्षमता में वृद्धि भेड़ो में फेक बी जीन के समावेश से संभव है।

अविशान भेड़ों के साथ भेड़पालक

फेक-बी : उच्च प्रजनन क्षमता एवं बहुअजता जीन

बहुअजता के लिए भेड़ में पहचाना गया फेक-बी प्रथम प्रमुख जीन है। यह जीन अण्डाणु देने की दर एवं प्रति ब्यांत बच्चा देने की दर को बढ़ाता है। इसका प्रभाव अण्डाणु देने की दर पर योगात्मक तथा प्रति ब्यांत बच्चा देने की दर पर आंशिक प्रभावी होता है। इस जीन का एक प्रतिरूप अंडाणु उत्सर्जन की दर को 1.6 गुणा बढ़ाता है या एक से दो अतिरिक्त बच्चों की संख्या को बढ़ाता है तथा इसके दो प्रतिरूप अंडाणु देने की दर को लगभग तीन गुणा बढ़ाते हैं। गहन डीएनए मार्कर आधारित तकनीक के उपयोग से यह स्थापित हो गया है कि फेक-बी जीन उत्परिवर्तन आस्ट्रेलियाई भेड़ समूहों में भारत की गैरोल भेड़ से हुआ है। उसके बाद उन भेड़ों में निरंतर संकर प्रजनन से बुरूला मेरिनो की उत्पत्ति हुई। भारत में इस जीन का प्रसार गैरोल भेड़ के प्रजनन के द्वारा दक्कनी, बन्नूर, मालपुरा आदि नस्लों में किया जा रहा है। जीन का प्रभाव विभिन्न नस्लों में भिन्नता होता है, जिसके कारण बहुअजता में भी भिन्नता पायी जाती है। इस भिन्नता के कई कारक हैं जैसे- वातावरण, भेड़ की ब्यांत संख्या, नस्ल, चयन प्रक्रिया, मादा का आहार और दूसरे जीन की उपस्थिति आदि। कुल मिलाकर फेक-बी जीन भेड़ पालन उद्योग में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है। दिनों-दिन फल-फूल रहे मांस उद्योग की जरूरतों को इस जीन के उचित उपयोग से पूरा किया जा सकता है।

अविशान भेड़ के विकास के लिए अपनाई गई प्रजनन पद्धति

फेक बी जीन के समावेश से एक मेंमना देने वाली भेड़ों में भी एक से ज्यादा मेमनें संभव है। इसी विशेषता को देखते हुए वर्ष 1997 में भारत की सूक्ष्म भेड़ कही जाने वाली गैरोल भेड़ में मौजूद फेक बी जीन को राजस्थान की मांसोत्पादक, बड़े आकार की भेड़ मालपुरा नस्ल में अर्न्तगमन हेतु संकर प्रजनन की शुरूआत की गई। गेरोल मेंढ़े के छोटे आकार के कारण कृत्रिम गर्भधारण की पद्धति अपनाई गयी। इसमें गेरोल मेंढों का वीर्य मालपुरा मादाओं में डाला गया। गैरोल एवं मालपुरा भेड़ के संकर

गैरोल नर

X

मालपुरा मादा

जीएम नर (50% गैरोल 50% मालपुरा)

X

मालपुरा मादा

जीएमएम नर (75% मालपुरा 25% गैरोल)

X

पाटनवाड़ी मादा

अविशान नर

अविशान
(त्रिसंकर बहुप्रजक भेड़)
(12.5% गैरोल, 37.5% मालपुरा एवं 50% पाटनवाड़ी)

अविशान मादा

अविशान भेड़ को विकसित करने के लिए अपनाई गई प्रजनन पद्धति

से जीएम अर्द्धसंकर का विकास हुआ। इन अर्धसंकर भेड़ो में आपास में प्रजनन तथा चयन की प्रकिया शुरू की गई और इनकी संतानो की उत्पादन क्षमता का आंकलन किया गया। इस प्रजनन से प्राप्त जीएम मेमनों में फेक बी जीन वाहक मेमनों को चिन्हक आधारित चयन पद्धति का उपयोग करके चुना गया। आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि जीएम भेड़ो में फेक बी जीन का समावेश सफलतापूर्वक हो गया है तथा जीएम मादा एक से अधिक बच्चे देने में सक्षम है। चूँकि गैरोल काफी कम वजन वाली भेड़ थी तथा जीएम में इसका 50 प्रतिशत अंश था इसलिए जीएम का शरीर भार मालपुरा की तुलना में काफी कम पाया गया।

फेक-बी वाहक जीएम भेड़ों में दो या तीन बच्चे प्राप्त होने लगे लेकिन इन भेड़ो का शरीर भार अपेक्षाकृत काफी कम था। ज्यादा मेमनें भी इस क्षति की भरपाई नहीं कर सकते थे। जीएम भेड़ों की अपेक्षाकृत कम भार की क्षतिपूर्ति के लिए जीएम (नर) भेड़ों का पश्चसंकरण मालपुरा भेड़ों के साथ किया गया। जिसके फलस्वरूप जीएमएम का विकास हुआ। जीएमएम में 75 प्रतिशत मालपुरा एवं 25 प्रतिशत गैरोल का अंश है। जीएमएम की 80 प्रतिशत मादा जुड़वा या अधिक मेमनें पैदा कर रही हैं। जीएमएम भेड़ों का शरीर भार जीएम की अपेक्षा अधिक था। साथ ही साथ जीएमएम भेड़ों में फेक बी जीन का भी सफलतापूर्वक समावेश हो गया। जीएमएम भेड़ों का एकल भार मालपुरा भेड़ो की तुलना में कम पाया गया पर ये भेड़ें प्रति ब्याँत अधिक मेमनें पैदा करने के गुण के कारण मादा उत्पादन क्षमता के आधार पर मालपुरा भेड़ से श्रेष्ठ साबित हुई। पीढ़ी दर पीढ़ी चयन एवं छँटनी की प्रकिया को अपनाकर एक पूर्णरूप से फेक बी जीन वाहक जीएमएम भेड़ों का रेवड़ तैयार किया गया। लेकिन जीएमएम भेड़ों में एक से ज्यादा मेमनें शारीरिक वृद्धि को प्रभावित कर रहे थे तथा मृत्युदर भी अधिक थी। इस कमी को दूर करने के लिए अधिक दूध देने वाली पाटनवाड़ी भेड़ों के साथ जीएमएम का प्रजनन शुरू किया गया। त्रिसंकर भेड़ के विकास के लिए चरणबद्ध तरीके से शरीरभार, प्रजनन क्षमता, फेक बी जीन इत्यादि के आकड़ों का विश्लेषण किया गया और उपयुक्त चयन पद्धति अपनायी गयी। गर्मी में आई भेड़ों की पहचान करके उसका मिलान फेक बी वाहक (BB या B+) जीएमएम मेंढ़ों से किया गया। चयन का आधार फेक बी जीन की उपस्थिति एवं शारीरिक भार है इसलिए जन्म के एक माह के बाद खून के नमूने लिये गये एवं फेक बी की उपस्थिति का पता लगाया गया। हर तीन माह के अंतराल पर शारीरिक भार लिया गया। फेक बी जीन एवं शारीरिक भार के आधार पर श्रेष्ठ नर एवं मादा का चयन किया गया। उसके बाद उसका मिलान किया गया और संतानों की उत्पादन क्षमता का आंकलन किया गया। पीढ़ी दर पीढ़ी यह प्रक्रिया अपनाकर (जीएमएम पाटनवाडी) त्रिसंकर भेड़ (अविशान) विकसित की गयी।

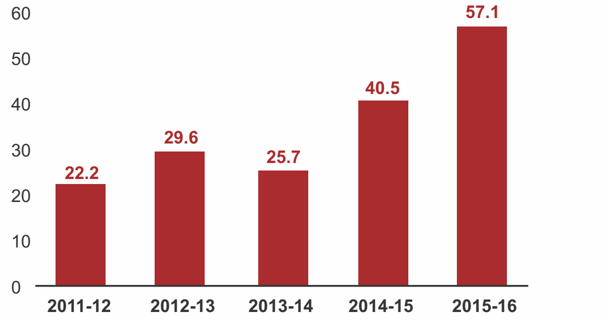

विभिन्न वर्षों में अविशान भेड़ की बहु प्रजनकता (%)

अविशान अधिक मांस, अधिक दूध, अधिक बच्चे एवं उच्च मादा उत्पादन क्षमता देने में सक्षम है। बहुप्रजनकता, शारीरिक भार, उत्तरजीविता, मादा उत्पादन क्षमता एवं दूध उत्पादन के अभी तक के परिणाम काफी सकारात्मक हैं।

बहुप्रजनकता

फेक-बी जीन की उपस्थिति के कारण विभिन्न वर्षो में जुड़वा मेमनों की सँख्या में वृद्धि हुई है। अभी लगभग 57.1 प्रतिशत मादाएं दो या दो से अधिक मेंमनें पैदा कर रही हैं। वर्ष 2015-16 में प्रति मादा औसत मेमनों की सँख्या 1.61 दर्ज की गई।

मादा उत्पादन क्षमता

मादा उत्पादन क्षमता (एक मादा से प्राप्त कुल मेमनों का औसत भार) माँस उत्पादन क्षमता को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण आर्थिक मापदण्ड है। मादा उत्पादन क्षमता के प्रमुख कारक, मादा की बहुप्रजनकता, मेमनों की उत्तरजीविता एवं प्रचलित प्रबंधन में प्रदर्शन है। मादा उत्पादन क्षमता में बहप्रजनक त्रिसंकर भेड़ स्थानीय मालपुरा से श्रेष्ठ पायी गई है।

दुग्ध उत्पादन

जीएमएम एवं पाटनवाड़ी के बीच संकरण से दुग्ध उत्पादन पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जीएमएम मादाओं में प्रतिदिन का औसत दुग्ध उत्पादन 433 ग्राम दर्ज किया गया, वहीं अविशान में प्रतिदिन का औसत उत्पादन लगभग 576 ग्राम दर्ज किया गया। जीएमएम व पाटनवाड़ी मादाओं के संकरण से पैदा अविशान मादाओं में जीएमएम मादाओं की तुलना में 33 प्रतिशत अधिक दुग्ध उत्पादन दर्ज किया गया।

अविशान भेड़ों का प्रबंधन

जुड़वाँ या उससे अधिक के समूह में पैदा मेंमनो का शरीर भार एकल पैदा मेंमनो की अपेक्षा कम होता है। साथ ही मादाओं से प्राप्त दुग्ध तथा गर्भ में भी संसाधनो का मेमनों के बीच बँटवारा होता है जो इनके वृद्धि को

तालिका 1. अविशान भेड़ का शारीरिक भार (किग्रा)

विवरण	जन्म भार	3 माह	6 माह	12 माह
औसत	3.28±0.03 (752)	16.89±0.25 (680)	24.91±0.36 (611)	32.73±0.50 (310)
एकल पैदा हुए मेमनें	3.76±0.04(519)	19.16±0.27(472)	27.81±0.39(433)	34.61±0.54(236)
जुड़वा पैदा हुए मेमनें	2.80±0.05(233)	14.62±0.33(208)	22.02±0.48(178)	30.85±0.74(74)

कोष्ठक में आंकड़ों की संख्या दी गई है

तालिका 2. अविशान भेड़ का ऊन उत्पादन एवं गुणवत्ता

गुण	नर	मादा	कुल औसत
प्रथम 6 माह की चिकनाईयुक्त ऊन (किग्रा)	0.761±0.019	0.691±0.019	0.726±0.01
तन्तु का व्यास (माइक्रॉन)	56.09±1.26	65.01±3.40	61.45±3.26
मेडुलेशन (%)	94.66±4.52	87.55±4.77	90.39±1.94
तन्तु की लम्बाई (सेमी)	6.35±0.57	6.12±0.66	6.22±0.24

तालिका 3. अविशान भेड़ की उत्तरजीविता (%)

आयु समूह/ वर्ष	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16
0-3 माह	89.13 (92)	91.15 (113)	99.35 (155)	92.67 (341)	93.0 (629)
3-12 माह	90.67 (75)	84.62 (65)	95.29 (85)	98.18 (165)	96.1(389)
वयस्क	91.49 (47)	93.33 (60)	100.00 (96)	98.58 (141)	98.6 (314)

तालिका 4. जीएमएम एवं अविशान भेड़ों का शरीर भार (किग्रा)

आनुवंशिक समूह	जन्म भार	03 माह	06 माह	12 माह
जीएमएम	2.69±0.04	13.10±0.19	18.87±0.24	23.82±0.4
अविशान	3.28±0.003	16.85±0.19	25.48±0.026	33.36±0.037
%सुधार शारीरिक भार में	21.9%	28.6%	35.1%	41.7%

तालिका 5. ऊन उत्पादन

आनुवंशिक समूह	प्रथम छः माह का ऊन उत्पादन	वयस्क वार्षिक ऊन उत्पादन
जीएमएम	0.436±0.011 ग्राम	0.755±0.028 ग्राम
अविशान	0.727±0.016 ग्राम	0.954±0.061 ग्राम
% सुधार	16.74%	26.36%

मादा संख्या	मेमनें की पहचान संख्या	जन्म भार (किग्रा)	12 माह भार (किग्रा)
B-37	A-575	2.30	28.5
	A-576	2.16	27.5
	A577	2.20	26.5
	योग	6.66	82.50

मादा संख्या	मेमनें की पहचान संख्या	जन्म भार (किग्रा)	03 माह भार (किग्रा)
B-245	NB-43	1.8	17.4
	NB-44	2.3	17.3
	NB-45	2.6	18.1
	NB-46	1.9	17.6
	योग	8.6	70.4

प्रभावित करता है। अत: यह जरूरी है कि जुड़वाँ पैदा मेमनों को अलग से पूरक आहार दिया जाये ताकि उनकी वृद्धि अच्छी हो और कम जन्म भार के विषम प्रभावों को आसानी से झेल सकें। इसके लिए मेमनों को दूसरी मादाओं से या अन्य स्त्रोतों से प्राप्त दूध (गाय, बकरी इत्यादि) या दूध प्रतिपूरक उपलब्ध कराके पाल सकते हैं।

उत्तम मादा उत्पादन क्षमता की असीम संभावना

कुछ अविशान मादाओं से रिकार्ड उत्पादन प्राप्त किया गया जो इन मादाओं के उत्पादन क्षमता की संभावना को दर्शाता है। मादा संख्या B-37 से पैदा तीन बच्चो से जन्म पर 6.66 किग्रा तथा 12 माह पर 82.50 किग्रा का सामूहिक भार प्राप्त किया गया। उसी प्रकार मादा संख्या बी-245 से पैदा चार बच्चों से जन्म पर 8.6 किग्रा तथा तीन माह पर 70.40 किग्रा का सामूहिक भार प्राप्त किया गया। इसी प्रकार के प्रदर्शन बहुप्रजनक त्रिसंकर मादाओं के उत्पादन क्षमता को दर्शाते हैं और इस बात को साबित करते हैं कि कम भेड़ पालकर भी अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की उत्पादन क्षमता भारत की किसी भी नस्ल में नहीं देखी गयी है।

अविशान भेड़ों का प्रक्षेत्र में परीक्षण

फार्म पर प्राप्त नतीजों का सत्यापन किसानों के रेवड़ में भी किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत किसानों को एक यूनिट (पाँच फेक बी जीन वाहक अविशान मादा तथा फेक बी जीन वाहक एक मेंढ़ा) दिया जाता है। प्रक्षेत्र में परीक्षण की शुरुआत प्रारम्भिक तौर पर वर्ष 2013 में फेक बी जीन वाहक 5 अविशान मादा एवं 1 नर को रिंडल्या गाँव के श्री गोपाल जाट के रेवड़ में स्थापित करके शुरु की गई। वर्तमान समय में 10 किसानों के रेवड़ में त्रिसंकर भेड़ों का परीक्षण चल रहा है। अभी तक संस्थान से जुड़े तीन किसानों को एक-एक यूनिट तथा 7 किसानों को क्षेत्रीय परीक्षण के लिए मेंढ़ा दिया गया। इसके अलावा बहुप्रदेशीय परीक्षण एवं मूल्याँकन हेतु महाराष्ट्र तथा झारखंड में क्षेत्रीय परीक्षण इकाई स्थापित की गयी है। किसानों के रेवड़ में भी फेक बी जीन वाहक मेढ़े

तालिका. अविशान का किसानों के रेवड़ में प्रदर्शन

मापदण्ड	औसत मान
मादाओं में एक से ज्यादा मेंमनें	50 प्रतिशत
प्रति मादा औसत मेंमना संख्या	1.57
जन्म भार	3.01 (किग्रा)
तीन माह भार	13.73 (किग्रा)
छ: माह भार	22.90 (किग्रा)
मादा उत्पादन क्षमता (3 माह भार)	18.73 (किग्रा)
मादा उत्पादन क्षमता (6 माह भार)	29-06 (किग्रा)
दूध छुड़ाने की उम्र पर उत्तरजीविता	92%

अविशान की विशेषता

- प्रति ब्यांत अधिक मेमना दर
- उच्च मादा उत्पादन क्षमता
- मादा में प्रचुर मात्रा में दूध
- अधिक शारीरिक भार
- अधिक माँस व ऊन ऊंची वृद्धि दर

बहुप्रजनक भेड़
अविशान
गैरोल :12.5%
मालपुरा : 37.5%
पाटनवाड़ी : 50%

भेड़ पालक को लाभ

- प्रति भेड़ अधिक आय
- प्रति भेड़ अधिक मांस उत्पादन
- उच्च वृधि क्षमता
- अधिक दूध
- अधिक मेमनें

इस जीन का प्रसार अपने बच्चों में करने में सक्षम हैं साथ ही साथ जीन वाहक मादा किसानों के रेवड़ में एक से ज्यादा बच्चे दे रही हैं।

अविशान भेड़ों के पालन से लाभ

अगर रेवड में मादाओं का जन्म दर 85 प्रतिशत तथा मेमना मृत्यु दर 5 प्रतिशत हो तो 100 बहुप्रजनक त्रिसंकर भेड़ों को पालकर प्रतिवर्ष एक बच्चा देने वाली भेड़ों की तुलना में 40 ज्यादा मेमनें प्राप्त किये जा सकते हैं। इन 40 अतिरिक्त मेमनों को 3-4 माह में 2500 ₹ प्रति मेमनें की दर से बेचकर लगभग एक लाख ₹ की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है। साथ ही साथ 40 अतिरिक्त मादा भेड़ों को पालने के खर्च से भी बचा जा सकता है।

नागालैंड की लम्बे बालों वाली बकरियों का शारीरिक लक्षण, प्रबंधन व उपयोग

नरेश कुमार वर्मा

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल- 132001

पूर्वोत्तर भारत का पहाड़ी क्षेत्र गाय, भैंस, भेड़, बकरी, याक, मिथुन आदि पशु आनुवंशिक संसाधनों की विविधता के लिए जाना जाता है। भारत में बकरी की आबादी लगभग 135 मिलियन है जिसमें से 4.35 मिलियन पूर्वी उत्तरी क्षेत्र में पायी जाती हैं। नागालैंड की बकरी आबादी 99350 है। इस बकरी को स्थानीय रूप से अपू-असू के नाम से जाना जाता है और नर बकरी को आने कहते हैं। नागालैंड की लंबे बाल वाली बकरी कम ज्ञात नस्ल की बकरी है। यह बकरी मुख्य रूप से मांस, मोटे फाइबर और त्वचा के लिए पाली जाती है। बकरी के बालों को वस्त्र, आभूषण और हथियार में सौंदर्यीकरण प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाता है। ये बकरी जुनेहोबोतो, टवेनसांग व किफ्री जिले के गावों में पायी जाती है, लेकिन जुनेहोबोतो में इनकी संख्या अन्य की तुलना में अधिक है। इन बकरियों का वाह्य, शारीरिक व अनुवांशिकी स्वरूप जानने के लिए इनके मूल स्थान से आंकड़े एकत्रित किये गये व उनका विश्लेषण किया गया।

नागालैंड की लम्बे बालों वाली बकरियों का मूल स्थान

शारीरिक लक्षण

इस बकरी का रंग काला व सफेद है। कुछ बकरियों में काले व भूरे और सफेद बालों का मिश्रण भी मिलता है। गर्दन और सिर काला है लेकिन चेहरे पर सफेद धब्बा मिलता है। कुछ बकरियां में पेट पर भी काले धब्बे दिखते हैं। अगर चेहरा सफेद होता है तो थूथन गुलाबी अन्यथा काली होती है। कान छोटे क्षैतिज रूप से खड़े होते हैं। सींग ऊपर की ओर तथा पीछे की ओर वक्र करते हैं। नर बकरियों में सींग मादा की तुलना में मजबूत बड़े व मोटे होते हैं। वयस्क नर में शरीर व गर्दन पर विशेष रूप से लंबे बाल होते हैं। छोटी उम्र के नर बच्चों और मादा बकरियों में बालों की लम्बाई तुलनात्मक रूप से कम होती है। दाढ़ी नर और मादा दोनों में मौजूद होती है। गलचर्म अधिकांश पशुओं में मौजूद है। टांगे थोड़ी छोटी होती हैं और घुटने के नीचे पैर आम तौर पर काले होते हैं।

नागालैंड बकरी नर

लम्बे बालों वाली बकरी

मादा (छोटे बालों वाली) बकरी

बकरियों का समूह

शारीरिक माप

नागालैण्ड बकरी में 3 महीने की आयु के जानवरों के विभिन्न शारीरिक मानको का मान (सेमी) 34.44±0.78 (ऊँचाई), 42.26± 0.95 (लंबाई), 48.67± 0.82 (छाती परिधि), 53.56±1.12, (पेट परिधि), 11.48± 0.20 (चेहरे की लंबाई), 1.98±0.17 (सींग लंबाई), 8.81±0.44 (कान लंबाई), 7.11±0.20 (पूंछ लंबाई) एवं 10.67 किग्रा शरीर का वजन था। 6 से 9 महीनों की उम्र वाले जानवरों (25) के इन्हीं मानकों का औसत मान(सेमी)क्रमशः 38.48±0.89, 46.44±0.89, 54.72±0.75,59.60±2.21, 12.68±0.37, 3.56±0.54, 7.6±0.27, व वजन 14.84±0.53,किलो था। वयस्कों (18 माह) में मादा जानवरो के लिए औसत मान (सेमी) क्रमशः 45.71±0.61, 56.35±0.81, 68.71±1.03, 77.44±1.40, 15.59±0.28, 7.79 ±0.71, 11.77±0.35, 9.24±0.23,व वजन 25.79±1.05, किग्रा तथा नर जानवरों में 48.43±1.52, 58.62±1.73, 71.24±2.21, 75.71±2.20, 16.19± 0.45, 13.43± 1.74, 10.70± 0.38, 9.71± 0 29 व वजन 31.48±4.25 किग्रा पाया गया (तालिका 1)।

आवास, पोषण व प्रंबधन

प्राप्त जानकारी के अनुसार ये बकरियां नागालैंड के छोटे व सीमांत किसानों द्वारा अर्द्ध-सघन प्रंबधन प्रणाली के अंतर्गत पाली जाती हैं। सर्वेक्षण के दौरान एक झुण्ड में 2 से 20 बकरियां देखी गई। बकरियों को सुबह चराने के लिए जंगलो में छोड़ दिया जाता है व शाम को घर वापिस लाया जाता है। रात के समय इनको अस्थाई रूप से बने घरों में रखा जाता है। ये घर बांस, लकड़ी के गट्ठे व फट्टों के बने होते हैं जिनमें बिजली व पानी की व्यवस्था नही होती। इन घरों का फर्श जमीन

चेहरे के बाह्य लक्षण

से 2-3 फुट की ऊँचाई पर रखा जाता है। इस तरह की व्यवस्था घर में साफ-सफाई व बेहतर वायु संचालन में मदद करती है। बकरियों के घर में आने-जाने के लिए छोटा द्वार होता है।

बकरी जंगल में उपलब्ध स्थानीय वनस्पति पर निर्भर रहती है। घर पर भी इनको मक्का, पेड़ के पत्ते, व स्थानीय घास खिलायी जाती है। घर पर चारा या दाना खिलाने के लिए लकड़ी के गट्ठे से एक विशेष प्रकार की नांद बनायी जाती है। क्योंकि ये बकरियां अधिकतम मांस व् बालों के लिए पाली जाती हैं इसलिए इनकी ल्योती/अयन कम विकसित व छोटे आकार की होती है। इनके स्तन भी छोटे व् शंकु आकार के होते हैं। प्रजनन प्राकृतिक माध्यम से कराया जाता है। नागालैंड बकरी प्रतिदिन 0.5-0.7 लीटर दूध दे सकती है परन्तु इनका दूध निकाला नहीं जाता बल्कि बच्चों के पीने के लिए छोड़ दिया जाता है। पहली ब्यांत के बाद एक ब्यांत मे दो बच्चों को जन्म देना आम बात है। बालों की कटाई वर्ष

आवासीय प्रणाली

तालिका 1. नागालैंड बकरियों की शरीरिक माप (सेमी) व शरीर भार (किग्रा)

आयु वर्ग	लिंग	संख्या	ऊँचाई	लम्बाई	छाती की परिधि	पेट परिधि	चेहरे की लंबाई	सींग की लम्बाई	कान की लंबाई	पूंछ की लंबाई	शरीर भार
तीन माह	नर	9	34.33±1.91	42.56±0.75	48.83±0.63	54.94±1.01	11.39±0.20	2.11±0.20	8.05±0.64	7.06±0.27	10.17±0.45
	मादा	18	34.50±0.74	42.26±0.78	48.67±0.82	53.56±1.12	11.48±0.20	1.98±0.17	8.81±0.44	7.11±0.20	10.67±0.55
	कुल	27	34.44±0.78	41.67±2.50	48.83±2.20	50.78±2.54	11.67±0.44	1.72±0.30	9.44±0.29	7.22±0.28	11.67±1.40
6-7 माह	नर	9	38.56±1.47	45.55±1.43	53.67±1.32	61.44±2.03	13.22±0.36	3.22±1.11	7.78±1.30	7.22±0.46	13.89±0.73
	मादा	16	38.44±1.66	46.94±1.14	55.31±0.90	58.56±3.28	12.38±0.53	3.75±0.58	8.93±0.29	7.81±0.33	15.36±0.70
	कुल	25	38.48±0.89	46.44±0.89	54.72±0.75	59.60±2.21	12.68±0.37	3.56±0.54	8.05±0.51	7.06±0.27	14.84±0.53
व्यस्क	मादा	34	45.71±0.61	56.35±0.81	68.71±1.03	77.44±1.40	15.59±0.28	7.79±0.71	11.77±0.35	9.24±0.23	25.79±1.05
	नर	21	48.43±1.52	58.62±1.73	71.24±2.21	75.71±2.20	16.19±0.45	13.43±1.74	10.70±0.38	9.71±0.29	31.48±2.45
	कुल	55	46.75±0.71	57.22±0.83	69.67±1.06	76.78±1.20	15.82±0.24	9.98±0.88	11.35±0.27	9.42±0.18	28.22±1.26

नांद में दाना खाती बकरी

चरागाह में चरती बकरियां

में एक बार की जाती है और बाल ₹ 3000/किलो की कीमत पर बाजार में बेच दिये जाते हैं। बकरी के मांस को ₹ 300/किलो की दर पर बेचा जाता है।

बालों की उपयोगिता

नागालैण्ड बकरी के बालों को वस्त्र, आभूषण और हथियार में सौंदर्यीकरण प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाता है। बकरी के बालो को काट कर प्राकृतिक ढ़ंग से पौधों से उपलब्ध होने वाले रंगो का इस्तमाल कर इन्हें रंगा जाता है। ये रंग वायुमंडल के हिसाब से सुरक्षित (इको–फ्रेंडली) व पक्के होते है। इनका प्रयोग बैज, कान की बालियां, वॉल हैगिंग, अशुखी (बेस्ट बेल्ट), अम्लाखा (क्रॉस बेल्ट), औकुखा (ब्रेसलेट) व शिकार में उपयोग होने वाले हथियार में होता है।

बकरी के बालों की उपयोगिता

निष्कर्ष

आनुवंशिक स्तर पर भी इन बकरियों को उत्तर-पूर्वी पहाड़ी व भारत की अन्य नस्ल की बकरियों से भिन्न पाया गया है। उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र की जलवायु की कठिन परिस्थितियों में सहज भाव से रहने वाली व लम्बे बालों की उपयोगिता के लिए जाने जानी वाली ये बकरियां नस्ल पंजीकरण के लिए सच्ची दावेदार हैं। इसके इलावा इनके सुधार व संरक्षण के लिए राज्य सरकार और पशु पालन विभाग द्वारा विशेष कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

आभार

हम निदेशक, भाकृअनुप राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल का इस अध्ययन के लिए दी गई सुविधाओं के लिए आभार प्रकट करते हैं।

श्रेष्ठ लेखों को पुरस्कार

''**पशुधन प्रकाश**'' पत्रिका में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा तीन श्रेणियों में पुरस्कृत किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग-अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है। पशुधन प्रकाश के सप्तम अंक (2016) के पुरस्कृत लेख निम्नलिखित हैः

प्रथम :
₹ 3000 नकद राशि एवं प्रशस्ति पत्र

भारत की विशाल एवम् बहुमूल्य गो-सम्पदा : एक सिंहावलोकन
प्रमोद कुमार सिंह एवम् लवी शर्मा,
भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल।

द्वितीय :
₹ 2000 नकद राशि एवं प्रशस्ति पत्र

माईटोकॉन्ड्रीयल डीएनए - पशुधन प्रजातियों के विकास एवं रूप - रेखा के लिए एक चिन्हक
रीना अरोड़ा, राकेश कुमार, अंजू शर्मा, याशिला गिरधर, सोनिका अहलावत एवं रेखा शर्मा
भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल।

तृतीय (संयुक्त) :
₹ 1500 नकद राशि एवं प्रशस्ति पत्र

उच्च तुंगता के वातावरण में पशुधन का शारीरिक एवं आनुवंशिक स्तर पर अनुकूलन
प्रीति वर्मा, मोनिका सोढ़ी, अंकिता शर्मा, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश
भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल।

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के सन्दर्भ में पशुधन और दुग्ध उत्पादन के विकास में प्रमुख समस्याएं और उनका निदान
सत्येन्द्र पाल सिंह, रश्मि सिंह एवं संजीव सिंह
राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, मुरैना।

बतीसी : दुधारू बकरी की नई नस्ल

मनोज कुमार सिंह एवं नवीन कुमार

भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

भारतवर्ष के विभिन्न भू-भागों में जलवायु एवं आवश्यकता के अनुरूप बकरियों की 26 नस्लों का विकास हुआ है। पश्चिमी उत्तर भारत की बकरियों की नस्लों की दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं आकार भारत के अन्य क्षेत्रों की बकरी की नस्लों की अपेक्षा अधिक है। उपरोक्त नस्लों को बकरी पालकों ने संकरण एवं चुनाव द्वारा सदियों में विकसित किया है। इसी कड़ी में राजस्थान के बकरी पालकों ने एक ऐसी बकरी नस्ल के विकास की आवश्यकता महसूस की जिसके दूध देने की क्षमता एवं दुग्धकाल बहुत अच्छा हो साथ ही जंगल में घास/झाड़ियों आदि को चरने की योग्यता, चरने के लिये लम्बी दूरी तक यात्रा करने की क्षमता एवं क्षेत्र के अर्ध-शुष्क एवं शुष्क वातावरण की कठोरता को सहने की शक्ति भी हो । अरावली पर्वत श्रृंखला के क्षेत्रों में जिसमें राजस्थान एवं हरियाणा राज्य प्रमुख रूप से आते हैं, बकरियों की उन्नत नस्लें जैसेकि सिरोही एवं जखराना पाई जाती हैं। राजस्थान के अलवर जिले में पाई जाने वाली जखराना नस्ल एक दुधारू नस्ल की बकरी है। बकरी पालक सिरोही नस्ल को भी उसकी उत्कृष्ट चराई योग्यता, शरीर सौष्ठव एवं दूध-मांस के अच्छे उत्पादन के लिए पालते हैं साथ ही अलवर, डींग, भरतपुर (राजस्थान) क्षेत्र के बकरी पालक उत्तर प्रदेश की दुधारू नस्ल की बकरी जमुनापारी को भी पसन्द करते हैं। किसानों के रेवड़ में इन्ही तीन नस्लों के मिश्रण से बतीसी बकरी का विकास हुआ है। बतीसी में जमुनापारी एवं जखराना जैसा दुधारूपन तथा शरीर सौष्ठव सिरोही के अनुरूप हैं। अत: उच्च उत्पादन क्षमता के कारण इसे अन्य नस्लों की अपेक्षा काफी अच्छे दाम मिलते हैं । इस नस्ल की बकरियां उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के कोसी एवं गोबर्धन क्षेत्र में भी बड़ी संख्या में बढ़ रही हैं।

शारीरिक गुण

बतीसी बकरी मुख्यत: मिश्रित रंगो वाली नस्ल है, इसके शरीर पर सफेद, काले या भूरे रंग के धब्बे (मुँह, छाती, पेट व टांगो पर) पाये जाते हैं । यह मध्यम कद (65-85 सेमी) की बकरी है जिसकी नाक जमुनापारी के अनुरूप बीच से उठी हुई (रोमन) तथा कान मध्यम आकार के (15-20 सेमी) लटकते हुए होते हैं। इसके थन (अयन) बड़े आकार के तथा शंक्वाकार होते हैं। इनके शरीर पर छोटे बाल होते हैं किन्तु गर्दन व टांगो पर बाल जमुनापारी के अनुरूप थोड़े बड़े एवं सघन होते हैं।

बतीसी बकरा

उत्पादन संबंधी गुण

पौढ़ मादा बतीसी बकरी का औसत शरीर भार 40-45 किग्रा होता है तथा वयस्क नर का शारीरिक भार 45-60 किग्रा होता है। 12 माह की आयु पर नर का औसत भार 25-30 किग्रा होता है। इस बकरी नस्ल की प्रथम ब्यांत की आयु 18-25 माह के करीब होती है। अच्छी चराई एवं पूरक आहार उपलब्ध होने की स्थिति में इनसे प्रथम ब्यांत में 30-35 प्रतिशत एवं दूसरी ब्यांत में 55-65 प्रतिशत बच्चे मिल जाते हैं। बतीसी बकरी अच्छे दूध उत्पादन के कारण किसानों में काफी लोकप्रिय है। अलवर क्षेत्र के बकरी पालकों के अनुसार यह बकरी औसतन 1.5 लीटर दूध प्रतिदिन देती है जबकि कुछ बकरियां (20.30%) 3 लीटर दूध तक प्रतिदिन दे देती हैं । इन बकरियों का दुग्ध काल भी लंबा (150-200 दिन) होता है इस प्रकार से एक दुग्धकाल में यह बकरी औसतन 150-250 लीटर दूध दे देती है। बकरी के दूध की मांग को देखते हुए इस नस्ल का विकास किया जाना आवश्यक है।

जलवायु अनुकूलन

बतीसी बकरी का प्रजनन क्षेत्र राजस्थान राज्य का अर्धशुष्क/ शुष्क तथा पठारी इलाका है। इस क्षेत्र के गोचर में खाद्य पदार्थों तथा पानी की विशेष कमी है। इस क्षेत्र में ज्यादातर हिस्सों में बरानी खेती का प्रचलन है। ऐसी स्थिति में बड़े पशुओं का पालन काफी खर्चीला एवं चुनौती भरा होता है। इस परिस्थिति में बकरी पालन एक अच्छा वैकल्पिक व्यवसाय है। बतीसी बकरी प्रतिकूल जलवायु में विकसित एक ऐसी नस्ल है जोकि तमाम अभावों एवं प्रतिकूलता के बावजूद अच्छा उत्पादान करने में सक्षम है। अतः इस नस्ल का वैज्ञानिक रूप से विस्तृत मूल्यांकन करते हुए विकास आवश्क है।

सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष

बतीसी बकरियां रखने वाले किसानों के पास अच्छी संख्या में बकरियां हैं तथा उनके रेवड़ का आकार 10-50 तक होता है । अच्छा दूध एवं मांस उत्पादान देने के कारण इसका विपणन मूल्य ₹ 8000 से 12000 प्रति बकरी तथा नर का ₹10000 से 20000 तक है। अलवर क्षेत्र में बतीसी नस्ल के बकरे ईद के समय काफी लोकप्रिय हैं तथा काफी ऊंचे दामों (₹20000-50000) पर बिकते हैं। इस नस्ल की 20-25 बकरियों का रेवड़ रखने वाला बकरी पालक आसानी से एक से डेढ़

तालिका 1. बतीसी बकरी के उत्पादन एंव जनन संबधी लक्षण

गुण	मान
प्रथम प्रसव उम्र	18-20 माह
दो ब्यांत का अन्तराल	11 माह
बहुप्रसवता (जुड़वा बच्चे देने की दर)	50-60 प्रतिशत
नर शरीर भार (6 माह पर)	16 किग्रा
मादा शरीर भार (6 माह पर)	13 किग्रा
नर शरीर भार (12 माह पर)	30 किग्रा
मादा शरीर भार (12 माह पर)	25 किग्रा
वयस्क नर का शारीरिक भार (2 वर्ष पर)	50 किग्रा
वयस्क मादा का शारीरिक भार (2 वर्ष पर)	38 किग्रा
प्रतिदिन औसत दूध उत्पादन	1.5 से 3 लीटर
दुग्ध काल	200 दिन

लाख रूपए वार्षिक आमदनी कर लेता है जो कि घर का खर्च एवं खाद्य आवश्यकता एवं आकस्मिक खर्चों के लिए आवश्यक होती है। सूखे क्षेत्र में पाई जाने वाली बकरी की यह संकर नस्ल गरीब ग्रामीणों के लिए एक ऐसी पूंजी है जो कि ए.टी.एम. की तरह काम करती है तथा किसान के प्रतिकूल परिस्थितियों में जीने का एक सबल साधन है।

बतीसी बकरी भविष्य में उत्तम दुधारू बकरी की नस्ल के रूप में अपार सम्भावनायें लिये हुए है। इसका विभिन्न खाद्य प्रबन्धन पद्धतियों में उत्पादकता एवं वातावरण सहिष्णुता परीक्षण किये जाने की आवश्यकता है। परीक्षणों में सफल पाये जाने पर इसका संरक्षण एवं प्रवर्धन करके इसे देश के सूखाग्रस्त इलाकों के किसानों में वितरित भी किया जा सकता है। यह नस्ल महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के सूखे इलाकों के लिए उपयोगी हो सकती है। अत: बतीसी नस्ल की बकरियों को प्रयोग के तौर पर उपरोक्त क्षेत्रों में परीक्षण किए जाने की आवश्यकता है।

कड़कनाथ मुर्गी पालन : एक लघु पूंजी उद्योग

मोहन सिंह, के मुखर्जी, दीप्ति किरण बरवा, केशर परवीन एवं प्रीति एक्का

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग- 491001

छत्तीसगढ़ एक उन्नतशील राज्य है। इसका क्षेत्रफल 1,35,198 वर्ग किलोमीटर है तथा इसका तकरीबन 41 प्रतिशत क्षेत्र वनाच्छादित है। यह राज्य मध्यप्रदेश राज्य से सन् 2000 में विभाजित हुआ और इसका मुख्य उद्देश्य आदिवासी क्षेत्रों का विकास था। छत्तीसगढ़ राज्य की 32.5 प्रतिशत आबादी जनजातीय है। जनजातीय क्षेत्रों में प्राय: बकरी पालन, मुर्गी पालन एवं सूकर पालन आजीवीका के मुख्य स्रोत हैं। मुर्गी पालन जन-जातियों में बहुत लोकप्रिय है, क्योंकि यह व्यवसाय आसानी से घर में शुरू किया जा सकता है। ग्रामीण एवं वनांचलों में मुर्गी पालन व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य शासन की अनेक योजनाएं कार्यरत हैं।

आंगनबाड़ी मुर्गी पालन के लिए छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख नस्लें असील एवं कड़कनाथ हैं। कड़कनाथ मुख्य रूप से मध्यप्रदेश राज्य के झाबुआ जिले में पाई जाती है पर छत्तीसगढ़ राज्य में भी ये बहुत लोकप्रिय है। यह नस्ल विलुप्त होने की कगार पर है, अत: इसका संरक्षण अत्यंत जरूरी है। कड़कनाथ मुर्गी पालन हेतु एक प्रमुख नस्ल है, जिसमें बीमारीयों से लड़ने की उच्च क्षमता तथा अधिक सर्दी एवं गर्मी सहने की क्षमता भी है । यह नस्ल आंगनबाड़ी कुक्कुट पालन हेतु भी उपयुक्त है।

आदिवासी क्षेत्र में आंगनबाड़ी की संभावनाएं

- कम प्राथमिक निवेश
- भूमिहीन किसानों के लिए उपयुक्त
- नगण्य खाद्य खर्च
- देशी मुर्गी के अंडे एवं मांस का स्थानीय बाजार में अच्छा मूल्य
- बेरोजगार युवकों तथा महिलाओं की आमदनी में बढ़ोतरी
- उत्तम प्रोटीन स्रोत

छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग के अंतर्गत पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय में कड़कनाथ की एक इकाई स्थापित है, जिसका मुख्य उद्देश्य आदिवासी क्षेत्रों में आंगनबाड़ी कुक्कुट पालन हेतु कुक्कुट वितरण है। यहां पर कड़कनाथ अंडों से चूजे निकाले जाते हैं तथा इन्हे पाला जाता है। यहां से निकले चूजों की मांग राज्य के विभिन्न जिलों में है। कड़कनाथ चूजों को किसानों को उचित दर पर बांटा जाता है, जिससे वे व्यवसाय करके अपनी अर्थिक स्थिति को

कड़कनाथ मुर्गीपालक

छत्तीसगढ़ कामधेनु वि.वि. द्वारा कड़कनाथ प्रशिक्षण कार्यक्रम

महिला मुर्गीपालक कड़कनाथ मुर्गियों के साथ

मजूबत कर सकें। यहां प्रस्तुत आंकड़े छात्रों द्वारा एवं किसान भाईयों के घरों में सर्वेक्षण से प्राप्त हुए हैं। पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय में कड़कनाथ की इस इकाई में समय-समय पर महाविद्यालय द्वारा महाविद्यालय स्तर पर एवं ग्रामीण क्षेत्रों में शिविर लगाकर कृषकों को कुक्कुट पालन पर प्रशिक्षण दिया जाता है।

मुर्गियों का रखरखाव

कड़कनाथ मुर्गी पालन के लिए किसी विस्तृत आवास की आवश्यकता नहीं होती है। दिन के समय इन्हें घर के आंगन में खुला छोड़ा जा सकता है तथा रात में आश्रय के लिए कम लागत वाली आवास सामग्री जैसे लकड़ी, बांस, घास, आदि से निर्मित दरबों का इस्तेमाल किया जा सकता है। गर्मी के समय सूरज की किरणों से बचने लिए घरों की छतों पर फैलने वाली सब्जी एवं फल की बेल लगाई जा सकती है, जिससे मुर्गियों को छाया मिले ।

दाना- टूटे चावल, गेहूँ के टुकड़े जैसी सामग्री इन्हें खाने में दी जा सकती है। कड़कनाथ कीड़े, घोंघे, घास, बचे हुए अनाज, फसल के अवशेष तथा घरेलू कचरों से आवश्यक ऊर्जा, खनिज और विटामिन प्राप्त कर लेता है।

प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ

कड़कनाथ द्विउद्देशीय पक्षी है इसका पालन अंडे एवं मांस दोनो के लिए किया जाता है। कड़कनाथ प्राय: काले रंग का होता हैं। इनके पंख काले चमकीले होते हैं। इनकी चोंच, जीभ, कलगी, पैर और नाखून भी काले रंग के होते हैं। कड़कनाथ मुर्गियों में शून्य से सात हफ्तों का औसतन साप्ताहिक देह भार क्रमश: 25.08, 38.06, 51.66, 70.62, 90.40, 117.48, 154.45 तथा 182.98 ग्राम पाया गया है। बीसवें हफ्ते में कड़कनाथ मुर्गी का औसतन देह वजन 1330 ग्राम तथा कड़कनाथ मुर्गे का औसतन देह वजन 1430 ग्राम पाया गया । कड़कनाथ मुर्गियों में एक से सात हफ्तों की औसत दाना रूपातंरण दक्षता (फीड कन्वर्जन एफीशिएन्सी) क्रमश: 2.64, 2.70, 3.74, 3.75, 1.45,1.76 तथा 2.43 पाई गयी है। बीसवें हफ्ते में कड़कनाथ मुर्गी की औसत दाना रूपांतरण दक्षता 2.54 पायी गयी है।

अंडे एवं मांस

अंडे हल्के से गहरे भूरे रंग के होते हैं। जर्दी अन्य मुर्गियों के मुकाबले अधिक पीली होती है। कड़कनाथ के एक अंडे का औसत वजन 43.98 ग्राम, एलबूमिन (स्वेतक) का वजन 23.38 ग्राम तथा जर्दी का वजन 16.26 ग्राम होता है। अंडे की बाहरी कवर (सेल) का वजन 5.40 ग्राम और मोटाई 0.40 मिमी तक होती है। औसतन जर्दी की ऊँचाई, जर्दी की लम्बाई तथा स्वेतक की लम्बाई क्रमश: 18.78, 6.88, 3.99 और 8.14 मिमी तक होती है। कड़कनाथ मुर्गियों के मांस को कालामासी भी कहते हैं। मांस में मिलेनिन की मात्रा अधिक होने की वजह से इनका रंग काला होता है। इनके मांस में प्रोटीन की मात्रा भी अधिक होती है। कड़कनाथ मुर्गियों के मांस में अन्य सफेद ब्रायलर मुर्गियों की अपेक्षा 25 प्रतिशत ज्यादा प्रोटीन होती है। इनके मांस में सफेद ब्रायलर मुर्गियों से कम

कड़कनाथ मुर्गी के अंडों की कैंडलिंग

छत्तीसगढ़ कामधेनु वि.वि. की कड़कनाथ मुर्गी इकाई

कड़कनाथ मुर्गी के चूजे

मात्रा में (0.73–1.05) कोलेस्ट्रॉल वसा होता है। इसके अतिरिक्त इनके माँस में सभी आवश्यक एमिनोअम्ल, विटामिन तथा खनिज (कैल्सियम, फास्फोरस, लोहा) इत्यादि प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं।

उत्पादन विशेषताएं

औसतन प्रथम अंडे पर आयु 20 हफ्ते, अधिकतम अंडा देने की अवधि 72 हफ्ते होती है। कड़कनाथ मुर्गी तीन माह में 1.0 किलो वजन की हो जाती है।

औषधीय गुण

कड़कनाथ अंडों में कम वसा होने की वजह से इन्हें बुजुर्ग एवं हाई ब्लड प्रेशर के मरीजों को भी दिया जा सकता है। इसके औषधीय गुणों के कारण इसके एक किलो माँस का बाजार मूल्य लगभग 600 रूपये है। इनके अंडों का उपयोग सरदर्द, मूर्च्छा, अस्थमा, किडनी संबंधी रोगों के उपचार में होता है। कड़कनाथ मुर्गियों का माँस होम्योपैथी चिकित्सा में भी उपयोग होता है। इनके माँस का उपयोग तंत्रिका संबंधी रोगों के उपचार में भी होता है।

भारतीय हिमालयन याक

करण वीर सिंह एवं एस जयकुमार

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

पालतू लंबे बालों वाले याक (बोस ग्रुननिएन्स) हिमालय क्षेत्र में पाए जाने वाले दुधारू पशु हैं। मुख्यत: यह दक्षिणी मध्य एशिया तिब्बती पठार से ले कर उत्तर तक फैले हुए हैं। याक प्राय: 3500 से 5000 मीटर की ऊँचाई पर पहाड़ों और पठारों के बीच घास के भू-भाग में पाए जाते हैं। भारत के कुछ उत्तरी इलाके मुख्यत: सिक्किम, हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश व जम्मू एवं कश्मीर के लद्दाख में याक आठ से दस हजार फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

याक सभी गोवंशियों के बीच शायद ऐसे पशु हैं जो अत्यधिक ठंडे इलाके से लेकर शुष्क रेगिस्तान में भी अपने आप को ढ़ाल चुके हैं। यह हर प्रकार की सब्जी और कांटेदार पौधों पर निर्वाह करते हैं, याक उस घास पर जीवित रहता है और बड़े चाव से खाता है, जिसे अन्य पशु देखना तक नहीं चाहते। जब पहाड़ी ढ़ालो पर घनी बर्फ जम जाती है, तब वह अपने नुकीले सींगों से दबी घास के ऊपर की बर्फ को हटाकर घास खोज लेते हैं। जाड़े के मौसम में जब पहाड़ों पर पानी जम जाता है तो वह बर्फ खाकर अपनी प्यास बुझाते हैं। इस प्रकार कठिन परिस्थितियों में भी वह आसानी से जीवन निर्वाह करते हैं। इनका शरीर घने, लम्बे और खुरदरे बालों से ढ़का रहता है जिनका रंग काला, भूरा , सफेद या धब्बेदार हो सकता है। जाड़े के मौसम में ये बाल और अधिक घने तथा लम्बे हो जाते हैं, इस कारण वह विषम जाड़े (शून्य से चालीस डिग्री से कम तापमान) में भी आराम से रहता है।

याक के रक्त में अच्छी मात्रा में हीमोग्लोबिन होता है, साथ ही इसके बड़े फेफड़े और दिल इसे अधिक ऊँचाई पर अधिक से अधिक क्षमता से उनके रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन को परिवहन करने मे सहायता करते हैं। इसके विपरीत, याक कम ऊँचाई पर लगभग 15° सेल्सियस से अधिक तापमान में गर्मी व थकान से ग्रस्त होने लगते हैं। इनके शरीर पर वसा की एक मोटी परत होती है और कार्यात्मक पसीने की ग्रंथियों का लगभग पूर्ण अभाव होता है जो कि अधिक ठंड में लाभकारी होती है।

घरेलू गोवंश की तुलना में, याक का रूमेन (पेट) असामान्य रूप से बड़ा तथा तृतीय आमाशय के सापेक्ष होता है। यह संरचना उन्हें

हिमाचली याक

लेह-लद्दाख के याक

एक बार में कम गुणवत्ता वाले भोजन की अधिक मात्रा का उपभोग करने में सहायता प्रदान करती है और यह प्रक्रिया लंबे समय तक अधिक पोषक तत्वों को निकालने के लिए भी सक्षम होती है। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के लिए प्रकृति ने उसे यह जानने की अनोखी शक्ति दी है कि किसी बर्फ की जमी हुई सतह उसके भार को सहन कर सकेगी या नहीं। इसी कारण पहाड़ी मार्ग पर यात्री किसी स्थल के विषय में सही जानकारी ज्ञात करने के लिए याक को अपने आगे रखते हैं। घोड़े के समान याक भी कभी अपना रास्ता नहीं भूलता, उसे सही दिशा का ज्ञान होता है।

एक वयस्क याक 6 फुट तक ऊँचा होता है और उसका वज़न एक टन तक हो सकता है। शारीरिक संरचना में याक एक भारी फ्रेम, मजबूत पैर और गोल फटे खुरों वाला जानवर है। इनका शरीर बेहद घने, लंबे बालों से ढ़का होता है। यह बाल शरीर पर, पेट की तुलना में कम नीचे लटके होते हैं। जंगली याक आमतौर पर काले व भूरे रंग के होते हैं। घरेलू याक अक्सर भूरे रंग का होता है और उसपर हल्के सफेद रंग के धब्बे दिखते हैं। याक के कान छोटे और चेहरा विस्तृत माथा लिए होता है। इनके चिकने सींग सीधे या हल्के घुमावदार होते हैं जो कि आम तौर पर काले रंग के होते है। नर याक में, सींग आम तौर पर 48 से 99 सेमी लंबाई के होते हैं। मादाओं के सींग छोटे (27 से 64 सेमी) होते हैं। प्राय: कंधे पर एक स्पष्ट कूबड़ होता है जो नर और मादा दोनों में पाया जाता है और गर्दन छोटी होती है।

याक बर्फ से ढ़के पहाड़ी क्षेत्रों में निर्वाह करने के लिए अत्यधिक अनुकूलित जानवर है और इसे आसानी से प्रशिक्षित भी किया जा सकता है। यह बेहद शान्तिप्रिय प्राणी है। याक में आक्रामकता बहुत ही कम दर्ज की गई है, हालांकि मादाएं अपने युवाओं के प्रति बेहद रक्षात्मक होती हैं। याक, गर्मियों में आमतौर पर जुलाई से सितंबर माह के बीच गाँव में स्थानीय बाड़ों मे रखे जाते हैं और वर्ष के शेष समय इनको खुला छोड़ दिया जाता है। किसान अपने मवेशियों के साथ ऊपरी मैदानी घास के मैदानों की तरफ इन्हें समूह मे ले जाते हैं। युवा नर याक छोटे-छोटे समूह बना कर वयस्क याक के झुंडो से दूर घूमते हैं, और नियमित रूप से एक दूसरे के साथ लड़ कर प्रभुत्व स्थापित करते हैं। जंगली भैंसों की तरह याक सूखी मिट्टी में लेट लगाते हैं। नर याक, मादा से एक वर्ष में चार बार अनुराग कर सकते हैं। प्रत्येक अनुराग कुछ घंटो का होता है। मादा याक को अपनी सही प्रजनन अवस्था में आने में आमतौर पर चार से छह वर्ष लगते हैं। युवा बछड़े लगभग 270 दिनों के बाद मई और जून महीनों में जन्म लेते हैं। मादा प्रसव एकांत और सुरक्षित स्थान पर देती है। बछड़ा जन्म के दस मिनट के भीतर ही चलने में सक्षम हो जाता है।

दोनों जंगली और घरेलू याक प्रजाति की मादा आमतौर पर हर दूसरे साल में एक बार बछड़ो को जन्म देती है, हालांकि पर्याप्त खाद्य आपूर्ति होने पर हर वर्ष जन्म संभव हैं। बछड़े एक वर्ष में दूध छोड़ने के बाद शीघ्र ही स्वतंत्र हो जाते हैं। जन्म के वक्त बछड़ो का रंग भूरा होता है जो बाद में गहरा काला हो जाता है और शरीर पर बालों का विकास होता है। याक बीस से अधिक वर्षो तक जिन्दा रह सकते हैं।

याक पर्वतीय निवासियों का मुख्य धन है। उसकी खाल से वे अपने लिए ऊनी वस्त्र बनाते हैं। याक के बालों से तम्बुओं के लिए कपड़ा तैयार किया जाता है। इसके बालों से बनी रस्सियाँ बहुत ही मजबूत होती हैं। बोझा ढ़ोने के अतिरिक्त याक पर्वतीय वासियों को दूध, चमड़ा, ऊन तथा गोबर देता है जिनका उपयोग आग तापने व भोजन बनाने में किया जाता है। याक के दूध से मक्खन बनाया जाता है और उसे बकरी के चमड़े की पोटली में 4 से 6 महीने तक कम तापमान में रखा जाता है जो सर्दियों मे काम आता है। देव स्थलों में पूजा के समय उपयोग किया जाने वाली चँवर, याक की पूँछ के बालों से बनायी जाती है। याक को उत्तराखंड में 'चँवरी गाय' भी कहते हैं। सफेद चंवर सर्वोत्तम मानी जाती है। इस पर सोने या चाँदी का मुठ्ठा

हिमाचल प्रदेश में याक

याक के दूध से बना मक्खन

याक की खाल

याक के पूंछ के बालों की बनी चँवर

चढ़ा कर देवस्थल तथा उत्सवों की शोभा बढ़ाने के लिए हिलाया – डुलाया जाता है।

लिनिअस द्वारा 1766 में याक बोस ग्रुन्निएन्स प्रजातियों के रूप में मूल रूप से नामित किया गया था। लेकिन यह नाम अब आम तौर पर केवल पालतू याक का उल्लेख करने के लिए किया जाता है। बोस मुटुस याक को जंगली प्रजातियों के लिए उपयोग किया जाता है। माईट्रोकॉड्रियल डीएनए निर्धारित प्रक्रिया द्वारा किए गए याक के विकास के इतिहास का विश्लेषण करने से पता चलता है कि याक एक लाख वर्ष पहले अन्य गोवंशी पशुओं से भिन्न हो गया था । याक के जीवाश्म पूर्वी रूस में पाये गए हैं। भारत में गाय का याक के साथ प्रजनन किया जाता है, जिससे बांझ द्जो और उपजाऊ जोमो या ज्होम का जन्म होता है। द्जो का इस्तेमाल खेती के कार्यो के लिए किया जाता है, जबकि जोमो दुग्ध उत्पादन के काम में आती है।

पशुओं में जीनोमिक चयनः एक विवेचना

गोपाल गोवाने एवं एल एल एल प्रिंस

भाकृअनुप- केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर - 304501

पशु प्रजनन एवं आनुवंशिकी विज्ञान में 1975 के सी.आर. हेंडरसन के सिद्धांतों के बाद काफी महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। पशु सुधार परियोजनाओं में सर्वश्रेष्ठ रेखीय निष्पक्ष भविष्यवाणी (ब्लप) का अनूठा योगदान रहा है जिसमें वंशावली एवं पशु के विशेष आंकड़ों (जैसे दूध की प्राप्ति, शरीर भार आदि) के आधार पर नई पीढ़ी की योग्यता का विश्लेषण बड़ी सटीकता से किया जाता रहा है। इसमें पशुओं की जनकीय गुणवत्ता को आधार मानते हुये नई पीढ़ी के जनन हेतु माता-पिता का चयन किया जाता रहा है। यह पद्धति वंशावली की सटीकता एवं आंकड़ों की स्पष्टता एवं नि:संदेहता पर निर्भर है। वर्ष 1960 से 2000 तक अमेरिका में हॉलस्टीन गायों का प्रति पशु दुग्ध उत्पादन लगभग दोगुना होकर 12,000 कि ग्रा पहुँच गया। इसी प्रकार से 1996 से 2015 तक मालपुरा भेड़,जो कि राजस्थान के अर्ध-शुष्क इलाके में पायी जाती है का छः माह आयु का शरीर भार 17 किग्रा से बढ़कर 30 किग्रा तक इन्ही सिद्धांतो के बलबूते पहुँच गया है। इस सबके बावजूद, ब्लप (BLUP) पद्धति की कुछ अपनी सीमायें थीं, जिस कारण चयन का परिणाम अन्य कारकों के साथ-साथ पीढ़ी के अंतराल पर व्युत्क्रम रूप से निर्भर करता था। परिणाम आने में पीढ़ियों का समय लग जाता था। सन 2001 में म्यूसन एवं सहयोगियों ने एक महत्वपूर्ण संशोधन करके दुनिया के सामने एक नई चयन पद्धित का अविष्कार किया । इस पद्धति में वंशावली का महत्व नगण्य कर इसे पशु की जीनोमिक रिश्तेदारी के आंकड़ो से बदल दिया। इस पद्धति से ''जीनोमिक ब्लप' (जी-ब्लप) का अविष्कार हुआ।

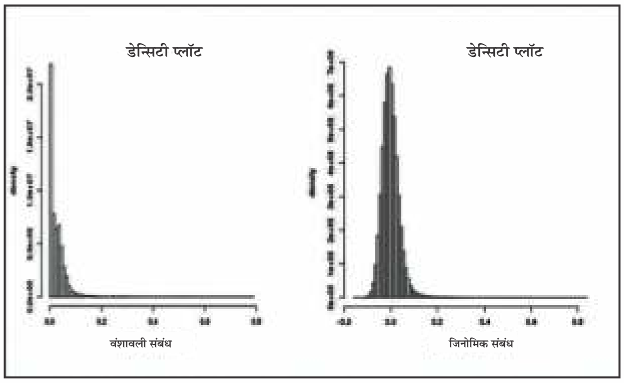

वंशावली पर आधारित रिश्तेदारी के आंकड़े हमेशा शून्य से शुरू होते हैं लेकिन जीनोम आधारित रिश्तेदारी के आँकड़े ऋणात्मक से घनात्मक होते हैं एवं रिश्तेदारी को सटीकता एवं बिना किसी गलती के पेश करते हैं। ऐसा होने से ''जी ब्लप'' की सटीकता ''ब्लप'' से कई गुणा अधिक रहती है।

''ब्लप'' में सुधार, पीढ़ी के आंकड़ों के आँकलन उपरान्त ही हो पाता है जिसमें हमें सुधार हेतु काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ''जी ब्लप' में चूँकि वंशावली का आधार नहीं लिया जाता, अत: नई पीढ़ी का चयन जन्म के तुरन्त बाद किया जा सकता है, जिससे काफी समय एवं पैसे की बचत हो सकती है। ऐसे गुण जो सिर्फ मादाओं में ही प्रकट होते हैं (जैसे कि दूध उत्पादन), परन्तु चयन नर का ही किया जाता है, ऐसे में ''जी ब्लप'' में चयन सीधे नर पशु के जीनोमिक आंकड़ों के आधार पर किया जाता है, जिससे चयन सटीकता काफी बढ़ जाती है। इसी तरह से कई ऐसे गुण जैसे पशु मांस की गुणवत्ता मृत्योपरांत ही पता चलती है उसे ''जी ब्लप'' की सहायता से जीवित पशुओं के खुद के जीनोमिक आंकड़ों के आधार पर आँका जा सकता है। ऐसा करने से न केवल इन गुणों का चयन प्रक्रिया में समावेश किया जा सकता है, बल्कि उनकी चयन सटीकता भी बढ़ती है।

जीनोमिक चयन हेतु एक संदर्भ पशु झुण्ड का होना बहुत जरूरी है। यह ऐसा समूह होता है जिसका नियमित रूप से गुण विशेषों का आंकड़ा संकलन हो रहा होता है। ऐसे समूह में गत कुछ पीढ़ियों से माता-पिता, रिश्तेदारों का 50,000 एकल न्यूक्लियोटाईड बहुरूपता के आधार पर जीनोमिक विश्लेषण किया जाता है। ऐसा करने के उपरान्त ''जी ब्लप'' के आधार पर एक समीकरण तैयार

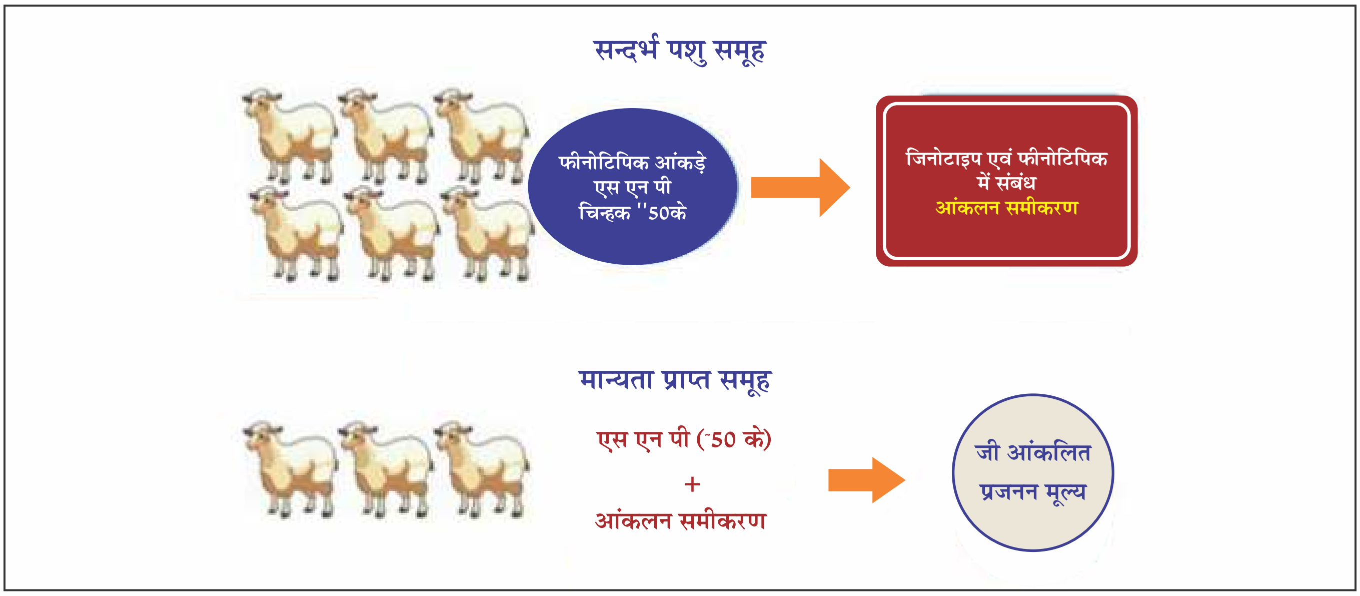

जीनोमिक चयन प्रक्रिया

होता है जो कि नई पीढ़ी के जीनोमिक आंकड़ो के आधार पर चयन प्रक्रिया में बड़ी ही सटीकता से कार्य करता है (चित्र 2)।

एकल पहल विश्लेषण

एकल पहल विश्लेषण (एस-एस, सिंगल स्टेप) ''जी ब्लप'' का अत्याधुनिक रूप है, जिसे हाल ही में लेगारा एवं सहयोगी (2009) तथा क्रिस्टनसन एवं लन (2010) ने अलग-अलग अविष्कार किया । इस एस-एस विश्लेषण में डी.एन.ए. के आधार पर 50के एस एनपी से प्राप्त रिश्तेदारी के आँकड़ों को हम उन जानवरों पर विस्तारित कर सकते हैं, जिनकी वंशावली तो हमारे पास है लेकिन डी एन ए से प्राप्त जीनोटाइप नहीं है।

इस विधि में वंशावली आधारित मेट्रिक्स के भीतर जीनोटाईप आधारित जी मेट्रिक्स को रखा जाता है जो हमें नया विस्तारित एच मेट्रिक्स प्रदान करता है। ऐसा करने से हम पहले से कई गुना ज्यादा पशुओं को जनुकीय विश्लेषण में शामिल कर सकते हैं। एच मेट्रिक्स से प्राप्त ''एस-एस जी ब्लप'' आधारित पशुओं का प्रजनन मूल्य अत्यधिक सटीक होता है। कई प्रजनन कार्यक्रम तथा सुधार योजनाओं में आज ''एस-एस जी ब्लप'' को उपयोग में लाया जा रहा है। ऐसा करना इसलिए भी आसान हो गया है क्योंकि हैंडरसन के पुराने मिश्रित समीकरण मॉडल में इसे (A-(की H-1) बड़ी आसानी से बैठाया जा सकता है एवं प्रजनन मूल्य की सटीकता को बड़ी ही आसानी से बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष

जीनोमिक चयन, वंशावली आधारित चयन का ही आधुनिक रूप है, किंतु इसकी सटीकता परंपरागत प्रणाली से काफी ज्यादा है। इतना ही नहीं इसकी कार्यप्रणाली नवीनतम है तथा सुधार हेतु निम्नतम समय भी एक क्रांतिकारी पहलू है। भारत देश में इस प्रक्रिया को स्वीकार करने से हम पशु सुधार परियोजनाओं में क्रांतिकारी बदलाव ला सकते हैं। किसानों के पशु जिनकी वंशावली हमारे पास नहीं होती, इन्हें भी हम आसानी से इस चयन प्रक्रिया में शामिल कर सकते हैं। इन सभी तथ्यों को देखते हुए इसमें जीनोमिक आंकड़े विश्लेषण हेतु लगाने वाली लागत बहुत ज्यादा नहीं है। वस्तुत: यह लागत भी दिन-ब-दिन कम होती जा रही है। भविष्य में सटीक, तेज एवं गुणवत्ता पूर्वक पशु सुधार हेतु जीनोमिक चयन को जल्दी से जल्दी अपनाना एक अच्छी पहल होगी।

संदर्भ

क्रिस्टन एवं लन (2010), जेनेटिक सिलेक्शन इवोल्यूशन 42, 2।

हेंडरसन सी. एच (1975), बायोमेट्रिक्स 31,423।

लेगारा एवं सहयोगी (2009),जर्नल ऑफ डेरी साइंस 92,4656-4663।

म्यूसन एवं सहयोगी (2001), जेनेटिक्स 157,1818-29।

ग्लोबल वार्मिंग एवं देशी पशुधन-संसाधन

बीरबल सिंह[1], गोरख मल[1], मोनिका सोढ़ी[2], प्रवेश कुमारी[2] एवं मनीषी मुकेश[2]

[1]भाकृअनुप- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, पालमपुर-176061
[2]भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001

प्राकृतिक सौर उष्मा से उत्पन्न तापीय तनाव अर्थात ''थर्मल स्ट्रेस'' कृषि एवं पशुधन विविधता और उत्पादकता के लिए चिंता का विषय है। यद्यपि विश्व स्तर पर अधिकांश प्राणी और पशुधन इससे कुप्रभावित हैं अत: आवश्यकता है कि ऐसे स्थानीय पशु नस्लों का अध्ययन किया जाए जिनमें तापीय तनाव को सहन करने की क्षमता हो। तत्पश्चात उनके अनुकूलन के आनुवंशिक कारकों का वैज्ञानिक आकलन कर, ऐसे आनुवंशिक कारकों का उन उच्च वर्ग पशु प्रबंधन में समावेश किया जाए।

क्या है ग्लोबल वार्मिंग ?

ग्लोबल वार्मिंग अर्थात भूमंडलीय तापक्रम में वृद्धि वर्तमान में विश्व स्तर पर बहुचर्चित समस्याओं में से एक है जिसके प्रभाव से समस्त प्राणी जगत और ब्रह्मांड प्रभावित हो रहा है। साधारण शब्दों में ग्लोबल वार्मिंग का आशय हाल ही के दशकों में हुई पृथ्वी की निकटस्थ सतह वायु और महासागर के औसत तापमान में हो रही वृद्धि और उसकी अनुमानित निरंतरता से है। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार गत 100 वर्षों में पृथ्वी की निकटस्थ सतह वायु और महासागर के औसत तापमान में 0.74±0.18 ℃ (1.33±0.32 °F) की वृद्धि हुई है।

भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि का मुख्य कारण है: मानवीय गतिविधियों द्वारा ग्रीन हाऊस गैसों जैसे कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाईट्रस ऑक्साइड व फ्लोरीन-युक्त गैसों के उत्सर्जन में अप्रत्याशित वृद्धि और वायुमंडल में उनका एकत्रित होना। ग्रीन हाऊस गैसों के अधिक मात्रा में वायुमंडल में एकत्रित होने से वायुमंडल ताप में वृद्धि होती है जिसके कई प्रभाव अनुभव किये गए हैं जैसे-

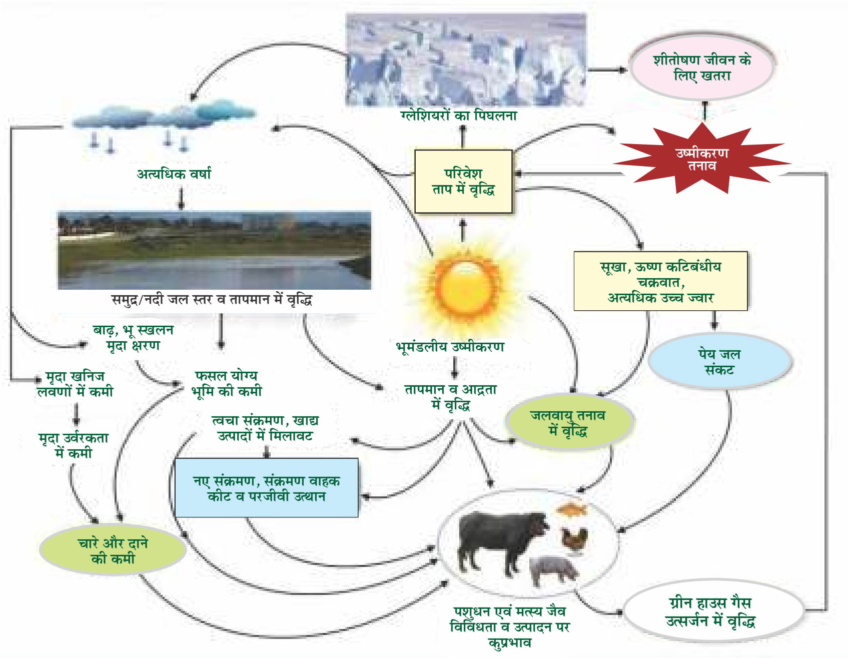

चित्र 1. भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि का पशुधन जैव विविधता व उत्पादन पर प्रभाव

तालिका 1. ग्लोबल वार्मिंग सम्बन्धित घटनाएं एवं उनके प्रभाव व परिणाम

घटनाएं	प्रभाव व परिणाम
अति ग्रीष्म मौसम	• प्राकृतिक आवास स्थलों व यातायात/आवागमन के समय बीमारी अथवा मृत्यु दर में वृद्धि। • नए परजीवियों, परजीवी कीट- वाहकों का उदय, पशुओं से मनुष्य में होने वाले परजीवियों में वृद्धि। • भूमंडलीय तापक्रम व जलवायु अति विषम परिवर्तनों से निपटने के लिए पशुधन प्रबंधन पर अधिक लागत का आना
सूखा और बाढ़	• पेय जल संकट गहराना, पेय जल स्त्रोत का दूषित होना, जल की लवणता में वृद्धि होना । • चारा फसलों के नष्ट होने से पोषण सम्बन्धी विकार, जीवाणु व फफूंद-जनित खाद्य विषाक्तता
पारिस्थितिकी तंत्र	• मृदा अपरदन, मृदा खनिज लवणों का कम होना, चारा व फसलों की पोषक गुणवता में परिवर्तन • वातावरण तनाव व खाद्य स्रोतों के प्रतिक्रिया स्वरूप पाचन परिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन, पशु पोषण, स्वास्थ्य व उत्पादकता में परिवर्तन

ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्र के पानी के तापमान व जलस्तर में अप्रत्याशित परिवर्तन, कृषि उपज में परिवर्तन, पादप और जीव जंतुओं का विलोपन, जीवाणु-जनित संक्रमणों में वृद्धि, हानिकारक परजीवियों और परजीवी-संवाहकों में वृद्धि आदि।

जैव सम्पदा पर भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि का प्रभाव

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि से समस्त जीव संसार प्रभावित हो रहा है (चित्र 1) यद्यपि कई प्रभाव स्पष्ट रूप से विदित हो चुके हैं लेकिन कुछ आशंकाएं व्यक्त की जा रही हैं जो निश्चय ही चिंता का विषय हैं।

भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि के पशुओं पर निम्नलिखित प्रभाव संभावित है:

उत्पादन गुणों में कमी: भूख कम होना, जल आवश्यकता में वृद्धि, रोग -प्रतिरोधक क्षमता में कमी, प्रजनन क्षमता पर विपरीत प्रभाव आदि।

पोषण व् खाद्य विकार: बछड़ों व् वयस्क पशुओं की चारा-ग्रहण क्षमता में कमी के कारण शरीर में पोषक तत्वों का अभाव, प्रोटीन व् ऊर्जा सम्बन्धी विघ्न , किण्वक (एन्जाइम) व् हॉर्मोन विकार। प्रोटीन, वसा, ग्लूकोज चयापचय में परिवर्तन होना, यकृत कार्यो का प्रभावित होना, इन्सुलिन का अधिक सक्रिय होना, रक्त में ग्लूकोज व् नॉन-एस्टररीफाईड फैटी अम्ल का स्तर कम होना, यकृत में ग्लूकोज संलेषण प्रक्रिया का बाधित होना, दुधारू पशुओं में लेक्टोज निर्माण में कमी होना तथा दुग्ध उत्पादन में कमी।

नर प्रजनन क्षमता पर प्रभाव: X तथा Y शुक्राणु के तापीय तनाव के प्रति पृथक संवेदनशीलता के कारण X तथा Y शुक्राणु की संख्या में परिवर्तनस्वरूप नर व् मादा संतान अनुपात में परिवर्तन। शुक्राणु डीएनए को क्षति, शुक्राणु का निष्क्रिय हो जाना अथवा मर जाना, निषेचन प्रक्रिया में बाधा तथा भ्रूण विकास में असामान्यताएं, गर्भधारण दर में कमी, प्लेसेंटा वजन में कमी और शिशु संख्या में कमी आदि अन्य प्रभाव की संभावनाएं रहती हैं।

मादा प्रजनन क्षमता पर प्रभाव: इन्हिबिन् की कमी, फोलिकल स्टीम्युलेटिंग हॉर्मोन के बढ़े स्तर के कारण अंडाशय में फोलिकल निर्माण, अंडाणु संख्या व् उसकी गुणवत्ता पर कुप्रभाव पड़ता है। तापीय तनाव के कारण अंडाणुओं की निर्माण क्रिया व् गुणवत्ता का कम होना, अंडाणु का मर जाना, निषेचन प्रक्रिया में बाधा, भ्रूण विकास में असामान्यताएं, गर्भधारण दर में कमी, प्लेसेंटा वजन में कमी और शिशु संख्या में कमी जैसे प्रभाव भी हो सकते हैं। ग्रेन्युलोसा कोशिकाओं में स्टेरोयड निर्माण व् स्राव में कमी, भ्रणू विकास में फ्री रेडिकल तथा ऑक्सिडेटिव तनाव में वृद्धि, भ्रूण विकास में असामान्यताएं व गर्भधारण में कमी भी हो सकती है। थायराइड कार्यों में कमी, प्रोलैक्टिन और ग्लूकोकोर्टीकोइडस स्तर में वृद्धि, टी-3 हॉर्मोन में कमी के कारण दुग्ध स्राव में कमी, गाय भैंसो में मद प्रदर्शन का अभाव आदि क्रियाएं भी होती हैं।

बहुपयोगी हैं देशी नस्लें

भारत पशु जैव विविधता के लिए विश्वविख्यात है। यहाँ गाय, भैंस, बकरी, भेड़, अश्व, ऊँट और याक जैसी पालतू पशुओं की अनेक स्थानीय नस्लें पाई जाती हैं जो लाखों वर्षो की क्रमागत उन्नति के परिणामस्वरूप जलवायु, खाद्य व् भौगोलिक परिस्थितिओं के अनुकूल ढ़ली हुई हैं। वर्ष 2012 में हुई 19वीं पशु गणना के अनुसार , हमारे देश में लगभग 190 मिलियन गोवंशी पशुओं की संख्या है, जिसमें से 151 मिलियन देशी एवं 39 मिलियन संकर/विदेशी नस्ल के गोवंश हैं।

उपयोगिता के आधार पर दुधारू पशुओं को तीन मुख्य श्रेणी में बांटा जा

सकता है। प्रथम श्रेणी में है अधिक दुधारू पशु जैसे विदेशी अथवा संकर गायें। देशी दुधारू पशुओं में साहीवाल, लाल सिन्धी, गिर व् राठी गाय नस्लें उलेखनीय हैं। दूसरी श्रेणी में भारवाही पशु नस्लें हैं। भारत की अधिकांश देसी पशु नस्लें, जैसे अमृतमहल, डांगी, हल्लीकर , खिल्लार, नागौरी, कान्गायम, मालवी और कंधारी इत्यादि गौ वंशीय पशु इस श्रेणी में सम्मिलित किये जा सकते हैं। इनके नर भार ढ़ोने के लिए उपयुक्त होते हैं। तृतीय वर्ग में द्विकाजी पशु नस्लें, जैसे हरियाणा, कांकरेज, मेवाती, कृष्णा वैली, अंगोल, देवनी एवं थारपारकर नस्लें आती है। इस श्रेणी के पशु शारीरिक रूप से सक्षम तथा उत्तम रोग-प्रतिरोधी होते हैं। विषम अथवा असामान्य जलवायु का इन पर विशेष कुप्रभाव नहीं होता है।

देशी पशुधन के विशिष्ट गुण

यद्यपि कई कारणों (चित्र 2) से विकासशील देशों में पाए जाने वाले पशु अपनी उत्पादन क्षमता से कम दुग्ध या मांस उत्पादन करते हैं तथापि ये देशी पशु नस्लें कई प्रकार से बहुउपयोगी हैं (तालिका 2)। स्थानीय जलवायु, चारा स्रोतों एवं संसाधनों के अनुरूप विशेष रूप से ढ़ला होना इनके उत्कृष्ट गुण हैं, जो हजारों वर्षों के अनुकूलन के फलस्वरूप विकसित हुए हैं। स्वदेशी गायों में कई विशेष जीन व चयापचय मार्ग विकसित हुए हैं जो इन्हें उच्च ताप, परजीवियों, सहिष्णुता एवं रोगों के प्रति प्रतिरोधिता प्रदान करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में जहाँ विदेशी या संकर नस्लों के लिए जीवित रह पाना दूभर हो जाता है, वहाँ भी थारपारकर जैसी देशी गाय सहजता से रह लेती है।

भारतीय मूल की विभिन्न पशु नस्लों पर विदेशों में विस्तृत अनुसंधान हुआ है। इजराइल में गिर गाय में हुए अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि भारतीय मूल की यह नस्ल दुग्ध गुणवता में विश्व में अद्वितीय है। ब्राजील में गिर गाय का दुग्ध उत्पादन में उल्लेखनीय योगदान है। महाराष्ट्र में खिल्लार नस्ल की गाय को थारपारकर नस्ल से अपग्रेड करने का

तालिका 2. देशी पशु-नस्लों की अनुकूलन योग्यताएं

पशु प्रजाति	विशिष्ट अनुकूली योग्यताएं
गाय	पसीना ग्रंथियों की बहुलता, जिससे पशु पसीने द्वारा शीतलता पा सकें। सूर्य किरणों को परावर्तित करने में सहायक चमकदार सूक्ष्म नर्म बाल। धूप में स्वाभाविक आदत, ऊष्मा को सहन करने तथा परावर्तित करने योग्य ढीली त्वचा । विदेशी गायों की तुलना में कम ऊष्मा निर्माण, गायों में कम ही सही लेकिन औषधीय गुणों से भरपूर दूध उत्पादन, नरों में भार ढोने तथा हल खींचने की उल्लेखनीय क्षमता आदि।
भैंस	गर्म और आर्द्र- गर्म परिस्थितियों में अनुकूलन, जीवाणु और परजीवी संक्रमण के प्रति उपयुक्त रोधकता, अधिक प्रोटीन व वसायुक्त दुग्ध उत्पादन, नरों में भार ढ़ोने की क्षमता, जल व कीचड़ में लोट कर शरीर को ठंडा रखने व परजीवियों और कीटों से बचाव की आदत। त्वचा की प्रतिरोधकता संरचना जो जीवाणुओं के संक्रमण से रक्षा प्रदान करती है। रूखे सूखे घास-फूस को पचाने में अधिक सक्षमता, चिलिका भैंसो में खारे पानी तथा खारे पानी में विद्यमान खर-पतवार को खाने की क्षमता का होना आदि।
भेड़	अधिक प्रजनन क्षमता, गैरोल नस्ल की भेड़ों में खारे पानी के प्रति प्राकृतिक अनुकूलन, सूखे के लिए मालपुरा और चोकला भेड़ों में प्राकृतिक अनुकूलन ।
बकरी	दुर्गम परिस्थितियों में चलने, रहने तथा चरने में सक्षमता; ठंढ़े क्षेत्रों में पाई जाने वाली बकरियों में उत्कृष्ट गर्म बाल (पश्मीना) का उत्पादन। चारे-पत्तों में विद्यमान विभिन्न विषैले पदार्थे का रूमेन में विद्यमान जीवाणुओं द्वारा विघटन तथा ऐसे चारे का समुचित उपयोग । कम लेकिन औषधीय गुणों से भरपूर दूध उत्पादन आदि विशिष्ट लक्षण हैं । निकोबारी बकरियों में खारे पानी में विद्यमान खर-पतवार को खाने की क्षमता ।
अश्व	दुर्गम परिस्थितियों, कम ऑक्सीजन में चलने, भार ढ़ोने तथा चरने में अनुकूलन।
उष्ट्र	रूखे सूखे घास-फूस को पचाने की सक्षमता, पानी के अभाव में कई दिन जिंदा रह लेना, रेगिस्तान में चलने योग्य पैरों की बनावट, औषधीय गुणों से भरपूर दूध।
याक व मिथुन	विषम परिस्थितियों, कम ऑक्सीजन में जीवनयापन, भार ढ़ोने तथा चरने में सक्षमता। रूखे-सूखे घास फूस को पचाने में सक्षम, हल जोतने, दूध व बाल/रेशे के उत्पादन के लिए उपयोगी।

चित्र 2. देशी पशुधन स्वास्थ्य व उत्पादन को कुप्रभावित करने वाले कारक

कार्यक्रम आरम्भ किया गया है ताकि अधिक दूध प्राप्त किया जा सके व नर अधिक कृषि- उपयोगी हों। देशी गाय की इन्ही उपयोगिताओं के लिए भारत सरकार ने स्वदेशी गोवंश के सुधार के लिए एक योजना ''राष्ट्रीय गोकुल मिशन'' का शुभारम्भ किया है। इस योजना के अंतर्गत बड़े शहरों अथवा नगरों के आस-पास स्वदेशी गौ- नस्ल केन्द्रों जैसे- ''गोपालन संघ'' की स्थापना की जानी है, जिसके स्वदेशी नस्लों का संरक्षण व विस्तार किया जा सके।

देशी पशुओं के प्रबंधन के लिए कुछ सुझाव

अधिक लागत व महंगे विदेशी पशु की तुलना में देशी पशु नस्लें हितकर हो सकती हैं। जहां किसान व पशु पालक पशुओं के चारा, स्वास्थ्य या पशु-उत्पादों को विपणन की समुचित व्यवस्था न होने के कारण, विदेशी अथवा संकर नस्ल के पशु पालने में असमर्थ हों, देशी पशु पालन लाभप्रद हो सकता है। इन पशुओं को कम लागत आधारित प्रबंधन एवं स्थानीय चारा स्त्रोतों पर भी पोषित किया जा सकता है जिससे इनकी प्रबंधन लागत कम होगी।

प्रजनन प्रबंधन

स्थानीय देशी नस्लों का संरक्षण किया जाना चाहिए। प्रजनन के लिए केवल चयनित और अच्छी नस्ल के सांड़ का उपयोग करें। देशी पशु नस्लों का संकरण नहीं किया जाना चाहिए।

खाद्य प्रबंधन

स्थानीय चारा स्रोत की पोषक गुणवत्ता में सुधार लाकर उनका विस्तार किया जाना चाहिए । ऐसे चारा स्रोतों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जो कम जल, जैविक व अजैविक तनाव में भरपूर उपज दे सकें। मृदा स्वास्थ्य परीक्षण कर फसलों में वांछित खाद्य और खनिज लवणों की आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए जिससे पशुओं में पोषक तत्वों की कमी न हो सके। पशुओं के रूमेन में पाए जाने वाले उत्कृष्ट जीवाणुओं की पहचान कर उन्हें प्रोबायोटिक के रूप में उपयोग किया जा सके। आवश्यक हो तो जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा उत्कृष्ट प्रोबायोटिक तैयार किये जाएं जो पशुओं के पोषण और स्वास्थ्य में अधिक योगदान कर सकें और मीथेन बनाने की क्रिया को कम करें।

प्रदर्शन व प्रसार

मेलों, पशु प्रदर्शनियों, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा स्थानीय पशु नस्लों पर कार्यक्रम आयोजित कर लोगों का ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए । किसानों व पशु पालकों को वैज्ञानिक ढंग से पशु पालन का महत्व बताया जाना चाहिए। स्वच्छ भारत मिशन के प्रति लोगों को जागरूक किया जाना चाहिए ताकि रोगों व कीटाणुओं और कीटों से राहत मिल सके ।

गौशाला का निर्माण ऐसा हो कि उनमें पर्याप्त हवा और जल उपलब्ध रहे। जाली दार दरवाजे और खिड़कियां लगा कर कीट मच्छरों से पशुओं को बचाया जा सकता है। संभव हो तो पशुओं को ठंडा रखने के लिए पानी की टंकी या फुहार या पंखों का प्रबंध हो।

परंपरागत लोक तकनीकी ज्ञान, संजाति विषयक स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों, पशुधन आधारित उत्पादों को महत्व दिया जाए ताकि कम लागत पर गुणवत्ता युक्त पोषक तत्वों का उत्पादन व आपूर्ति सुनिश्चित हो सके और महंगे जंक फूड की आदत से बचा जा सके। संक्षेप में कहा जा सकता है पशुधन का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। आवश्यकता है कि ऐसी देशी नस्लों की पहचान की जाए, उनके अनुकूलन के आनुवंशिक कारकों का वैज्ञानिक आकलन कर, ऐसे आनुवंशिक लक्षण पशु नस्लों में समावेश किये जाएं जो विषम जलवायु व ग्लोबल वार्मिंग से अधिक प्रभावित न हों और जिनका मानव आहार, स्वास्थ्य और आजीविका में आवश्यक योगदान है।

बिना संसर्ग के जीव का जन्म

रवि रंजन, एस डी खर्चे एवं अनुज कुमार सिंह सिकरवार

भाकृअनुप- केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा- 281122

क्या बिना संसर्ग के जीव का जन्म संभव है? इस प्रश्न का उत्तर है-हां। अनिषेचन जनन (पार्थेनोजेनिसिस) वह तकनीक है जिसमें बगैर नर संसर्ग कराये मादा जन्म दे सकती है। पार्थेनोजेनिसिस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द ''पार्थनोन'' यानी कुवांरी तथा ''जेनेसिस'' अर्थात उत्पत्ति से मिलकर हुई है, इसका अर्थ ''अनिषेचन जनन''है। अनिषेचन जनन अनेक अकशेरूकी जीवों के चक्र में प्राकृतिक रूप से होता है। प्राकृतिक अनिषेचन जनन प्राय: कुछ कीट वर्ग जैसे- हयूमेनोप्टेरा होयोपेटस, रोटीफेरा, कोलोपेटरा तथा निम्न अकेशरूकी जीवों में मिलता है। यह कुछ थोड़े से केशरूकी जन्तुओं में भी देखा गया है जैसे-छिपकली । लैंगिग प्रजनन वाले जीवों में अण्डा बगैर निषेचन के कृत्रिम तरीके से सक्रिय करने को कृत्रिम या उत्प्रेरित अनिषेचन कहा जाता है।यह उत्प्रेरण भौतिक, ताप, रसायनिक, वैद्युत इत्यादि हो सकता है। अनिषेचन उत्प्रेरण का उद्देश्य निषेचन के समय शुक्राणु कोशिकाओं की क्रियाओं को अनुकारी बनाना है। इसमें कई प्रयोगात्मक तरीके जैसे कि यांत्रिक, विद्युत विषयक, रसायनिक हैं, जो स्तनधारियों में अनिषेचनात्मक विकास को प्रेरित करते हैं। अण्डाणुओं में अचानक दरार के माध्यम से विभाजन होता है। कभी- कभी मोलोनी सरकोम अनकोजीन (एम.ओ.एफ.) की कमी से अण्डाणु मेटाफेज II तक नहीं पहुंच पाते हैं और उनका यकायक अनिषेचन सक्रियता से हो जाता है, इसे अचानक अनिषेचन जनन कहते हैं।

अण्डाणुओं की अनिषेचित सक्रियता

यांत्रिक विधि: अण्डाणुओं की प्लाज्मा झिल्ली में महीन सूई से यांत्रिक भेदन ही कैल्शियम अन्तर्वाह और विकास शुरू करने के लिए पर्याप्त है। सुअर के अण्डाणुओं में कैल्शियम का माइक्रोइंजेक्शन लगाकर कैल्शियम क्लोराइड को माइक्रोइंजेक्ट कर दिया जाता है।

वैद्युत विधि: वैद्युत उद्दीपन प्लाजा झिल्ली में छिद्र बनाकर कैल्शियम अन्दर आने देता है। चूहे के अण्डे को उष्मा के अघात से सक्रिय किया गया और मौरूला अवस्था तक पहुंचाया गया इसके साथ ब्लास्टूला अवस्था विकसित हुई। प्रयोगशाला में परिपक्व अण्डाणु ताप उद्दीपन पर सक्रिय रह सकते हैं और ब्लास्टोसिस्ट तक विकसित हो सकते हैं। चुम्बकीय क्षेत्र के माध्यम से भी बिल्ली के अण्डाणु सफलतापूर्वक सक्रिय किये गए हैं।

रसायनिक विधि: इसमें सामान्यत: इथेनोल, कैल्शियम आइनोफोर आइनोमाइसिन, स्ट्रोनटियम क्लोराइड इत्यादि रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इथेनोल उपचार अण्डाणुओं के साइटोप्लाज्मिक भण्डारण में कैल्शियम नि:सृत कर अन्त:कोशीय स्वतंत्र कैल्शियम सान्द्रता को बढ़ाने को प्रोत्साहित करता है। निषेचन में अन्त: कोशिकीय कैल्शियम की मात्रा तीव्र गति से बढ़ती गयी है। बेहतर सक्रियता तथा विकास पाने तथा अण्डाणुओं की सक्रियता पर आइनोमाइसिन उपचार का समय, सान्द्रता और अवधि का प्रभाव पड़ता है।

अनिषेचित भ्रूण की विकासात्मक योग्यता

स्तनधारियों में प्राकृतिक रूप से अनिषेचित जनन नहीं होता है, किन्तु विभिन्न तरीकों से कृत्रिम अनिषेचित भ्रूण उत्पन्न किए जा सकते हैं। अनिषेचित रूप से उत्पन्न भ्रूण की वृद्धि को नियन्त्रित करने वाला जीन प्रारम्भिक भ्रूण विकास के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण साधन है। अनिषेचित भ्रूण से उत्पन्न स्तम्भ कोशिकाओं का बहुत महत्व है तथा ये उपचार तथा भविष्य में शोध क्षेत्र के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। पार्थोनोटस की विकासात्मक योग्यता/क्षमता के सम्बन्ध में पशु प्रयोगशाला में अनेकानेक अध्ययन किये जा चुके हैं। जब स्तनधारी अण्डाणुओं को सक्रिय कर दूसरे जीव में प्रत्यारोपित किया जाता है तो वे 10 दिन माउस, 21 दिन भेड़, 40 दिन सुअर, 11.5 दिन खरगोश, 10-12 दिन बन्दर, 67 दिन गाय एवं 38 दिन बकरियों में जीवित रहते हैं।

14 दिसम्बर, 2014 को पालतू मादा हैमर हेड शार्क ने सामान्य रूप से विकसित मादा बच्चे को जन्म दिया। पार्थीनोजेनेसिस जन्तुओं की तुलना में पादपों में ज्यादा पायी जाती है, जिसे 'पार्थेनोकार्पी' कहा जाता है। पार्थोनोटस के प्रत्यारोपण से गर्भ धारण हो सकता है जो गाय में औसतन 67 दिन तक बने रहते हैं। जब पार्थेनोजेनिटिक भ्रूण को गर्भाशय प्रदान करने वाली भेड़ में प्रत्यारोपित किया गया तो सभी पार्थेनोजेटिक भ्रूण 21 दिन तक गर्भावस्था में जीवित रहे । सामान्य तथा पार्थेनोजेटिक गर्भाशय की झिल्ली के आकार या झिल्ली की आकृति में किसी तरह का अन्तर या भेद नहीं होता है। पार्थेनोजेनेटिक स्तनधारी भ्रूण की मृत्यु का निर्धारण जीन के पितृत्व या मातृत्व के जीनोम की इमप्रिन्टेड गुणों के न उभरने से होता है, इसका परिणाम तन्तु और अंगो के विकास में महत्वपूर्ण दोषों से होता है। द्विगुणित अनिषेचित स्तनधारी भ्रूण की मृत्यु से यह पता चलता है कि पित्रात्मक या मातृतात्मक जीनोम लिखित गुणों का प्रकटीकरण नहीं होता, जो तन्तुओं तथा अंग के विकास में कमी के रूप में दिखाई देता है। अभी हाल ही में माउस (कगुआ) के जन्म के साथ ही स्तनधारी पार्थेनोजिनेसिस प्राप्त हुई। इसने घरेलू पशुओं की अनिषेचन से क्लोनिंग किये जाने की आशा जगायी है।

प्रारम्भिक सूचनाएं स्तनधारियों में जीवित बच्चे को जन्म देने में अनिषेचन को विफल होने को रेखांकित करती हैं। इसका मुख्य कारण पैतृक जीन्स की अनुपस्थित है, जो सामान्य भ्रूणीय विकास के लिए आवश्यक है। इस बाधा को दूर किया जा सकता है, यदि सम्पूर्ण गुणसूत्र को अनिषेचित भ्रूण में लाया जा सके। *इन-विवो* तथा आइवीएफ से उत्पन्न भ्रूणीय कोशिका कॉलोनी की अपेक्षा अनिषेचित भ्रूणीय कोशिका कॉलोनी में मातृत्व दर्शाने वाले जीन्स का प्रकटीकरण अधिक होता है । बकरे के अनिषेचित भ्रूणों में विकास से सम्बन्धित जीन्स का प्रकटीकरण अधिक होता है। तीन अनिषेचित द्विगुणित भ्रूण प्राप्त करने वालों की 40 दिनों के बाद अल्ट्रासोनोग्राफी करने पर द्रव से भरी गर्भाशयकाय के साथ ठोस भ्रूण समान संरचना दिखायी देती है। यह मृत गर्भाशय हो सकता है।

प्रोजेस्ट्रॉन प्रोफाइल भी गर्भावस्था के अनुमान की सम्पुष्टि करता है। ग्रहियों में प्रत्यारोपित अनिषेचित भ्रूण के गर्भनाल के विकास में समस्या आती है। अतः उपस्थित समस्या का निदान चतुर्गुणित समापन जांच (टी.सी.ए.) जैव तकनीक से हो सकता है जिसमें दो स्तनधारियों के भ्रूणों के संयोग से एक नया भ्रूण तैयार किया जाता है। वैद्युत धारा (इलेक्ट्रिक करण्ट) के माध्यम से दो कोशकीय अवस्था भ्रूण का जोड़ शुरू होता है। गर्भ में प्रत्यारोपित करने के बाद चतुर्गुणित भ्रूण अतिरिक्त भ्रूणीय तन्तु उत्पन्न करता है, किन्तु उचित भ्रूण कभी-कभी ही विकसित होता है। इस तकनीक में चतुर्गुणित तथा द्विगुणित कोशिका पूर्ण जीव के निर्माण और विकास में एक-दूसरे के पूरक हैं, जबकि द्विगुणित अनिषेचित भ्रूणीय स्तम्भ कोशिका या भ्रूण का चतुर्गुणित भ्रूणों के साथ सम्बर्धन किया जाता है।

लाभ

- अनिषेचन जनन से विकसित बच्चे बहुत कुछ अपनी मां के सदृश्य होते हैं।
- यह लिंग निर्धारण सूत्र के सिद्धांत क्रोमोसोमल थ्योरी को भी शुद्ध क्लोन सिद्ध करती है।
- अनिषेचित भ्रूण आणुविक विकास के अध्ययन में महत्वपूर्ण साधन है।
- यह तकनीक भ्रूणीय स्तम्भ कोशिका के विभिन्न उपयोगों में प्रयोग की जाती है।

हानियां

- यह नवीन तथा उपयुक्त जीन्स के संयोग बनाने को बढ़ावा नहीं देती है।
- यह अनुकूलनीयता तथा विकास को रोकती है।
- स्तनधारियों में अनिषेचित भ्रूण जीवित रहने तक विकसित नहीं होता, क्योंकि उसमें विकासात्मक जीन्स की कमी और कुछ अज्ञात कारक होते हैं।

समेकित कृषि : सतत् आजीविका के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प

सोनिका अहलावत, नेहा, रेखा शर्मा, रीना अरोड़ा एवं एम एस टाँटिया

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल- 132001

जनसख्ंया वृद्धि, शहरीकरण और आय वृद्धि के कारण विकासशील देश वैश्वीकरण की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसके फलस्वरूप खेती योग्य भूमि कम होती जा रही है। मनुष्यों के लिए भोजन और पशुओं के लिए चारे की पर्याप्त मात्रा बनाए रखने के लिए फसलों और पशुओं के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। पशुधन क्रांति के कारण वर्तमान उत्पादन क्षमता में तो वृद्धि हुई है परन्तु इसके कारण पर्यावरण सम्बंधित समस्याएं पैदा हो रही हैं। इसलिए जहाँ उपभोक्ता की माँग, पोषण में सुधार और आय के अवसरों को बेहतर बनाने की आवश्यकता है, वहीं पर्यावरण संरक्षण करना भी अत्यंत जरूरी है। परम्परागत खेती में निरन्तर गिरावट हो रही है और आज भारत की लगभग 80 प्रतिशत आबादी के पास एक हेक्टेयर कृषि भूमि है। इस कारण से हमारे देश में परम्परागत खेती के विस्तार की कोई गुजांइश नहीं बची है।

आज के परिपेक्ष्य में खेती के विभिन्न घटकों को एकीकृत करके कम स्थान और कम समय में केवल उर्ध्वाधर विस्तार ही संभव है। इस विकल्प द्वारा ही कृषि परिवारों के लिए उचित आय को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसलिए कृषि में सकारात्मक वृद्धि दर बनाए रखने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण आज के समय की आवश्यकता है। सीमांत उत्पादकता के क्षेत्रों में गहन जुताई वाली पांरपरिक कृषि को मिट्टी और चरागाह के आकर्षण का मुख्य कारण माना जाता है। इसलिए प्रौद्योगिकी योजनाओं को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है जिनके द्वारा उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। इसके साथ ही प्राकृतिक संसाधनो के आधार को संरक्षित करना भी जरूरी है। इस रूपरेखा के अनुसार एक एकीकृत फसल-पशुधन कृषि प्रणाली पशुधन उत्पादन को बढ़ाने और संसाधनों के कुशल उपयोग के माध्यम से पर्यावरण की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण समाधान है। भूमि पर बढ़ते दबाव और पशु उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए चारा संसाधनों का प्रभावी उपयोग बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

समेकित कृषि की अवधारणा

खाद्य और कृषि संगठन (1971) ने निर्दिष्ट किया है कि कृषि में कुछ भी अपशिष्ट नहीं होता और फसल के अवशेषों को समेकित कृषि से संशोधित करके अन्य उत्पादों के लिए

समेकित खेती के प्रमुख पहलू

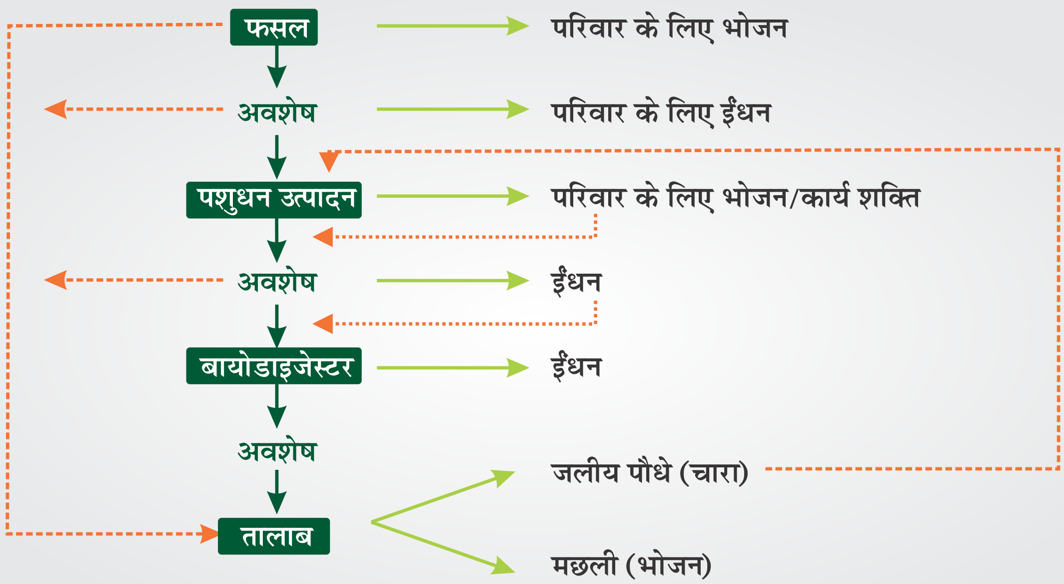

प्रवाह आरेख : समेकित कृषि में विभिन्न घटकों का एकीकरण

मूल्यवान सामग्री बनाई जा सकती है। उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम प्रबंधन और अपशिष्टों की पुनरावृत्ति के लिए वैज्ञानिक कृषि के उचित सिद्धांतो पर आधारित विभिन्न प्रकार की कृषि और संबंधित उद्यमों का एकीकरण, समेकित कृषि को परिभाषित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन, उत्पादकता, आय सृजन को अधिकतम करना और निर्धारित समय अवधि में इकाई भूमि क्षेत्र से लाभदायक रोजगार प्रदान करना है। समेकित कृषि प्रणाली में कई संसाधन बचत प्रथाएं शामिल हैं, जिनका लक्ष्य स्वीकार्य लाभ एवं निरंतर उत्पादन स्तर प्रदान करना है और साथ ही गहन खेती के नकारात्मक प्रभावों को कम करते हुए पर्यावरण को संरक्षित करना है।

समेकित कृषि प्रणाली के लाभ

- भू-क्षरण को कम करना
- फसल की पैदावार, मृदा जैविक गतिविधि और पोषक पुनर्चक्रण को बढ़ाना
- भूमि उपयोग में सुधार से लाभ में वृद्धि
- पर्यावरण स्थिरता को मजबूती करना
- निर्धनता और कुपोषण को कम करना

समेकित कृषि के मुख्य सिद्धांत

1. **चक्रीय:** कृषि प्रणाली अनिवार्य रूप से चक्रीय है (जैविक संसाधन - पशुधन- भूमि- फसलें) इसलिए एक घटक में संबंधित प्रबंधन निर्णय दूसरे घटकों को प्रभावित करता है।
2. **तर्कसंगत :** फसल और पशु अवशेषों का तर्कसंगत रूप से उपयोग स्थिर उत्पादन की ओर अग्रसित करता है।
3. **पारिस्थितिकीय स्थिरता :** पारस्थितिक स्थिरता और आर्थिक व्यवहार्यता से कृषि उत्पादकता में सुधार होता है और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम होता है।

समेकित कृषि पद्धति के लक्ष्य

इस पद्धति के चार प्राथमिक लक्ष्य हैं:

- स्थिर आय प्रदान करने के लिए सभी घटक उद्यमों का अधिकतम उपयोग।
- प्रणाली की उत्पादकता में सुधार करना और कृषि पारिस्थितिक सतुंलन को बनाए रखना।
- कीट-पतंगो, बीमारियों और खरपतवार का प्राकृतिक फसल प्रबंधन द्वारा निवारण।
- उर्वरक और कीटनाशक के इस्तेमाल को कम करके समाज को रसायन मुक्त पर्यावरण प्रदान करना।

तालिका 1. समेकित कृषि के अवयव और तत्व

अवयव		तत्व
कृषि	बत्तख पालन	सौर ऊर्जा
बागवानी	मधुमक्खी पालन	जैविक गैस
वानिकी	मछली पालन	जल संरक्षण
मशरूम की खेती	दुग्ध उत्पादन	जैव उर्वरक
अज़ोला की खेती	बकरी पालन	जैव कीटनाशक
रेशम के कीड़ों का पालन	भेड़ पालन	खाद बनाना
रसोई बागवानी	सूअर पालन	वर्षा जल संचयन
बीज उत्पादन	मुर्गी पालन	हरी खाद
चारा उत्पादन	खरगोश पालन	कीटनाशकों के रूप में वनस्पति उत्पाद
मूल्य संवर्धन	कृषि	तालाब

विविध प्रणाली और समेकित कृषि में भिन्नता

विविध प्रणाली में फसल और पशुधन जैसे अवयव शामिल हैं, जो स्वतंत्र रूप से उपस्थित होते हैं। यहाँ संसाधनों की पुनरावृत्ति नहीं होती तथा फसलों और पशुओं का एकीकरण जोखिम और नुकसान को कम करने में मुख्य रूप से कार्य करता है। परन्तु समेकित कृषि में फसलों और पशुधन का एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव, उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग को सुनिश्चित करता है। फसल के अवशेषों को पशु चारे के लिए इस्तेमाल किया जाता है और पशुधन उत्पादों को प्रसंस्करण के द्वारा कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। मूल रूप से समेकित कृषि और वाणिज्यिक कृषि प्रणाली के बीच भेद पूर्ण नही है, बल्कि फर्क संसाधनों के एकीकरण के स्तर का है। फसलों और किसानों के एकीकरण को एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। परन्तु इस प्रणाली की दीर्घकाल तक आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए छोटे किसानों को पर्याप्त ज्ञान, संपत्ति व निवेश की आवश्यकता है।

समेकित प्रणाली के लाभ

- एक उद्यम के अवशेषों की पुनरावृत्ति से दूसरे उद्यम के लिए उर्जा सामग्री उपलब्ध हो जाती है, इसलिए इस प्रणाली से बेहतर लाभ हासिल किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर फसल के अवशेषों और उतोत्पादों को पशु आहार के लिए इस्तेमाल किया जाता है और खाद का उपयोग फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया जाता है।
- अपशिष्टों का पुनर्नवीनीकरण बाहरी उर्जा निवेश पर निर्भरता को कम करने में मदद करता है। फलस्वरूप प्रकृति और दुर्लभ संसाधनो का संरक्षण हो जाता है। जैविक अपशिष्टों के पुनर्चक्रण से रसायनिक उर्वरक की आवश्यकता कम हो जाती है। इसके अलावा जैविक गैस उत्पादन घरेलू आवश्यकता को पूर्ण कर सकता है।
- यह प्रणाली भूमि की उर्वरता बढ़ाने और उसके संरक्षण में मदद करती है। मृदा उर्वरता और फसलों की पैदावार में सुधार के लिए तथा फसलों की कटाई और स्थांनातरण में पशु महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पशु बिजाई, जुताई, भार वाहन, सड़क निर्माण, विपणन और सिचांई के लिए पानी ढ़ोने जैसी गतिविधियो में इस्तेमाल होते हैं।
- पशुओं का गोबर दो महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाता है: इसमें कई पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम) और जैविक पदार्थ होते हैं। किसान पशुधन के अपशिष्टों को उर्वरक के रूप में उपयोग कर सकते हैं। यह स्थिति तब और भी महत्वपूर्ण हो जाती है जब पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि के कारण रसायनिक उर्वरक किसान की पहुंच से बाहर हो रहे हैं।
- ऊर्जा प्रदान करना: गोबर घरेलू उपयोग (जैसे कि खाना पकाना, बिजली) या ग्रामीण उद्योगों (जैसे कि पानी के पंप) के लिए जैविक गैस और उर्जा के उत्पादन का आधार है। गोबर के उपले तथा जैविक गैस ईंधन के स़्त्रोत के रूप में कोयला और लकड़ी की जगह ले सकते हैं।
- यह त्वरित, कुशल और आर्थिक रूप से व्यवहार्य है क्योंकि अनाज की फसलों को चार से छह: महीने में तैयार किया जा सकता है और

तालिका 2. देश के विभिन्न राज्यों में समेकित कृषि अनुसंधान के मॉडल

राज्य	मौजूदा सिस्टम	शुद्ध लाभ (₹)	समेकित कृषि	शुद्ध लाभ (₹)
तामिलनाडु	चावल-चावल ब्लैक ग्राम	8,312	चावल-चावल-कपास + मक्का	15, 009
			चावल-चावल-कपास + पोल्ट्री/मछली	17, 209
	चावल-चावल	15,299	चावल-चावल-एजोला/केलोटोपिस+मछली	17, 488
	चावल-चावल-चावल पखी-दाल	13,790	चावल-चावल-चावल-परनी-कपास+ मक्का+बत्तख+मछली	24, 117
	एकेले फसल	36,190	फसल+मछली+पोल्ट्री	97, 731
			फसल+मछली+कबूतर	98, 778
			फसल+मछली+बकरी	1, 31,118
	चावल	22,971	चावल+मछली	28, 569
			चावल+ऐजोला+मछली	31, 788
गोवा	काजू	36,330	नारियल+चारा+डेयरी	32, 335
			चावल-बैंगन (0.5 हैक्टेयर) + चावल-लोबिया (0.5 हैक्टेयर)+मशरूम + पोल्ट्री	75, 360
मध्य प्रदेश	कृषि योग्य भूमि	24,093	मिश्रित खेती+2 गाय	37, 668
			डेरी (2 गाय) + 15 बकरी + 10 कुक्कुट + 10 बत्तख + मछली	44, 913
महाराष्ट्र	कपास+मूंगफली	(-)92	ब्लैकग्राम प्याज+मक्का+लोबिया	1, 304
			फसल+डेरी+रेशम	3, 524
			फसल+डेरी	5, 121
उत्तर प्रदेश	फसल (गन्ना-गेहूँ)	41,017	फसल (गन्ना+गेहूँ) + डेरी	47, 737
कर्नाटक	चावल-चावल प्रणाली	21,599	चावल-मछली (क्षेत्र के केन्द्र में पिट)- कुक्कुट (अलग से पालन)	62, 977
			चावल-मछली (क्षेत्र के एक तरफ गड्ढ़े) कुक्कुट (मछली के पिट पर शेड)	49, 303

स्रोत : मंजूनाथ व सहयोगी (2014) रिसर्च एण्ड रिव्यूज़ : जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड एलाइड साइंस

फसलों की कटाई के बाद चरागाह का निर्माण तेजी से किया जा सकता है।

- फसल के अवशेष इस प्रणाली के दूसरे स्तंभ का प्रतिनिधित्व करते हैं जिस पर इस प्रणाली का संतुलन निर्भर करता है।
- विभिन्न उद्यमों के एकीकरण के कारण कृषि उत्पादन में अधिक स्थिरता आई है। इस प्रणाली के द्वारा वर्ष भर किसानों को दूध, मशरूम, शहद, रेशम, काजू आदि के माध्यम से धन प्राप्त होता है, जिससे गरीब किसान कर्ज दाताओं के कर्ज से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। समेकित कृषि से किसानों को आय के अन्य साधन भी प्राप्त होते हैं जो कीमत और जलवायु परिवर्तन के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करते हैं।
- इस प्रणाली से किसानों को पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध होता है जिससे चारे की कमी की समस्या का निवारण होता है।
- यह प्रणाली उद्यमी को अधिक ज्ञान सृजन के प्रति जागरूक करती है जो कि समाज के विकास के लिए एक अच्छा संकेत है।

समेकित कृषि से महिलाओं का सशक्तिकरण

महिलाएं घरेलू कार्य के साथ कृषि से संबधित कार्यो में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों में इनका योगदान

सराहनीय है। परिवार श्रम और विभिन्न घरेलू संसाधनो के विवेकपूर्ण उपयोग से अधिक लाभ हासिल करना संभव हैं। परन्तु यह केवल महिलाओं को विशेष प्रशिक्षण देकर सार्थक किया जा सकता है जो कि महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक अच्छा कदम होगा। आने वाले समय में शैक्षिक स्थिति में सुधार के साथ-साथ कृषि एवं घरेलू संसाधनों के प्रबधंन में महिलाओं की भूमिका तेजी से बढ़ेगी। आज के समय में पुरूष गैरकृषि क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं, इसलिए महिला केंद्रित कृषि प्रणाली विकसित करना एक वास्तविक चुनौती तो होगी ही परन्तु महिला सशक्तीकरण के लिए एक अच्छी शुरूआत भी होगी।

समेकित कृषि प्रणाली की सफलता की कहानियां

समेकित कृषि ने कश्मीर में सीमान्त किसान को बनाया आदर्श

दक्षिण कश्मीर के कुलगाम में एक सीमान्त किसान गौहर अहमद गनी 0.35 हेक्टेयर जमीन पर रबी सीजन में भूरी सरसों और खरीफ में चावल की पारंपरिक फसलों की खेती करते थे। लेकिन कम मौद्रिक आय ने गौहर को अपने बड़े भाई के साथ मिलकर इसका विकल्प खोजने के लिए प्रेरित किया। इसके लिए उन्होनें कृषि विज्ञान केन्द्र कुलगाम से मार्गदर्शन प्राप्त किया जिससे उन्हें विभिन्न योजनाओं के तहत वैज्ञानिक तरीकों से एकीकृत खेती करने में मदद मिली। उन्होंने 0.1 हेक्टेयर के एक क्षेत्र पर एक मछली तालाब की स्थापना की जिसके लिए मत्स्य पालन विभाग ने उनकी मदद की। उनकी रूचि को देखते हुए शेर-ए-कश्मीर विश्वविद्यालय ने उन्हें कुक्कुट पालन के लिए मुर्गियां प्रदान की। इसके अतिरिक्त वनराजा और क्रॉयलर पक्षी की भारी मांग को देखते हुए उन्होंने अधिक मुर्गियों की आपूर्ति के लिए कुक्कुट विभाग से सम्पर्क किया। कृषि विभाग और बागवानी विभाग ने उन्हें दो पॉलीहाउस और बे-मौसम सब्जियों की खेती के लिए अन्य सहायता और बाजार में शुरूआती आपूर्ति के लिए पौधों की स्थापना के साथ समर्थन किया। कुलगाम के फ्लोरीकल्चर अधिकारी ने फूलों और सजावटी पौधों को बढ़ावा देने के लिए हाल ही में उन्हें चार पॉलीहाउस का आवंटन किया है। कृषि विज्ञान केन्द्र ने उनके द्वारा उत्पादित साम्रगी के विपणन में भी समर्थन दिया।

इससे उन्होंने बड़े पैमाने पर लॉन घास और सजावटी पौधों को भी बढ़ाना शुरू कर दिया जिनकी इस क्षेत्र में काफी मांग है। इनकी सालाना पारिवारिक आय लगभग ₹23000 थी जो कुक्कुट पालन , मत्स्य पालन, फूलों की खेती और कृषि के एकीकरण के साथ तेजी से सुधरी और वर्ष 2013 में ₹ 2.77 लाख तक पहुंच गई। अब इस परिवार की आय बढ़कर 1.6 लाख प्रतिमाह हो गई है यानि की 19 लाख प्रतिवर्ष जोकि किसान की उन्नति के साथ सबको काफी प्रभावित करती है। जिसके कारण कृषि विज्ञान केन्द्र ने उन्हें ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण देने के लिए एक मागदर्शक के रूप में आमंत्रित करने का निर्णय लिया। ये अपने साथी किसानों के बीच प्रेरणास्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं।

समेकित कृषि से सिक्किम में आजीविका सुरक्षा में सुधार

पूर्वी सिक्किम के निवासी श्री निम शेरिंग लेपचा आजीविका के एक मात्र साधन के तौर पर अपनी 2 हेक्टेयर भूमि पर पारंपरिक कृषि कर रहे थे। अत्यधिक मेहनत के बावजूद कृषि उत्पादकता कम थी और आय भी सतोषंजनक नहीं थी। लेकिन भाकृअनुप कृषि विज्ञान केन्द्र रानीपूल, सिक्किम द्वारा पिछले तीन वर्षो (2013-16) के हस्तक्षेप ने उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति को बदल दिया है। भाकृअनुप जैविक खेती प्रौद्योगिकी बैकअप सिक्किम केन्द्र ने क्षेत्रीय प्रदर्शनों और निवेश समर्थन पर प्रशिक्षण उपलब्ध कराने के माध्यम से विकासात्मक भूमिका निभाई है। नेशनल इन्नोवेशन ऑन क्लाइमेट रैज़ीलिऐन्ट एग्रीकल्चर के अंतर्गत उनकी पारंपरिक कृषि को समेकित जैविक कृषि प्रणाली में परिवर्तित करने के लिए अनेक निवेश प्रदान किए गए ताकि उनकी कृषि आय में वृद्धि हो सके। इनमें से प्रमुख हैं, जलकुंड बनाने के लिए कृषि-पोलीथीन शीट, वर्षा जल संरक्षण की सरंचना व वनस्पति उगााने,

समेकित कृषि के विभिन्न अवयव

समेकित कृषि के विभिन्न अवयव

चावल की खेती में परती के समय मटर की खेती , बेहतर मक्का किस्म आर.सी.एम. 1–1 और बेहतर चावल किस्म आर.सी.एम. 10 के लिए कम लागत वाली प्लास्टिक टनल,वनराजा के साथ कुक्कुट पालन और चारा घास के रूप में छत पर हाइब्रिड नेपियर घास की खेती ।

ग्रास कार्प व कॉमन कार्प के साथ मत्स्य पालन की वैज्ञानिक प्रबंधन की विधियां, दुग्ध उत्पादन के लिए जर्सी गाय व बड़ी इलायची की किस्में सानी व वर्लन्गी भी उपलब्ध करवाई गई। सब्जियों की खास किस्में जैसे गोभी, फूलगोभी, ब्रोकली, टमाटर, धनिया, पालक, मूली की क्रमिक रूप से कम लागत पर पॉलीहाउस में खेती की गई। इसके तहत कम पानी में ज्यादा पैदावार की जा सकती है जिससे पानी की बचत भी होती है।

कोझीकोड केरल में केले के अवशेषों से जैविक मशरूम का उत्पादन

केरल के कोझीकोड जिले के श्री सत्येश कुमार ने केले के छद्म स्टेम और अरीका अखरोट का उपयोग करके मशरूम खेती की शुरूआत की और 'गोविन्द मशरूम' के मालिक बन गए। उन्होंने भाकृअनुप–कृषि विज्ञान केन्द्र से प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् केरल के कोझीकोड़ से स्पॉन खरीद कर अपना उपक्रम शुरू किया तथा बाद में उन्होनें स्वयं की स्पॉन उत्पादन ईकाई स्थापित की। उन्होंने धान पुआल आसानी से उपलब्ध नही होने के कारण केले के अवशेषों का प्रयोग करके मशरूम के बिस्तर तैयार करने शुरू किए। इसके लिए उन्होनें केले के पत्ते के डंठल और तने के छिलके के बाहरी हिस्से को काटकर छोटे टुकड़ों में विभाजित कर उपयोग किया। यह विधि जैविक मशरूम उत्पादन को सुनिश्चित करती है। इस सामग्री से नमी वांछित स्तर तक सुखाई जाती है और मशरूम बेड तैयार किए जाते हैं। इस तकनीक के द्वारा वे अधिक लाभ कमा रहे हैं। इस तरह के उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए भाकृअनुप–कृषि विज्ञान केन्द्र ने कोझीकोड जिले में मशरूम की खेती की नई तकनीक लोगों को सिखाने के लिए प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया है।

निष्कर्ष

समेकित कृषि मिट्टी, पानी, वनस्पति व वातावरण और उनकी पारस्परिक क्रियाओं का संयोजन है। यह प्रणाली न केवल उच्च उत्पादन व संसाधन पुनरावृत्ति के लिए एक भरोसेमंद विकल्प है, बल्कि स्थायी कृषि के लिए उचित वातावरण की संकल्पना है। क्योंकि इस प्रणाली में एक घटक के अवशेष दूसरे घटक के लिए निवेश हैं, अतः इससे लागत कम होती है व उत्पादन और आय में वृद्धि होती है। इस लेख में उल्लेखित सफलता की कहानियां बताती हैं कि कृषि उद्यमों का एकीकरण (फसलें, पशुधन, मत्सय पालन, वानिकी आदि) कृषि आर्थिकी में सुधार की क्षमता रखता है। उद्योग न केवल किसान की प्रति ईकाई उत्पादन में वृद्धि करते हैं, बल्कि संसाधनों का उचित उपयोग करके रोजगार के नए अवसर भी प्रदान करते हैं।

भारत में गोधन का महत्व

शालू कुमार[1], हरेन्द्र सिंह चौहान[2], आर जी बुरटे[1], बी जी देसाई[1], आर के पुंडीर[3], पी एस डांगी[3], एस पी यादव[2], डी एस साहू[2] एवं जवाहर लाल कुलदीप[1]

[1]डॉ बालासाहेब सावंत कोंकण कृषि विद्यापीठ, दापोली, रत्नागिरी, महाराष्ट्र - 415712
[2]सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रोधोगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ - 250110
[3]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल- 132001

प्राचीन काल से हमारे देश में गाय एक प्रतिष्ठित, सम्मानित तथा पालतू पशु माना जाता रहा है। हमारा देश कृषि प्रधान देश है एवं यहॉ की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है। गाय हमारे कृषि कार्यो में अप्रत्यक्ष रूप से बहुत सहायक है। गाय के बछड़े बड़े होकर बैल बनते हैं जोकि हल खींचकर बीज बोने और अन्न उपजाने में हमारे किसानों की सहायता करते हैं। इसी कारण से गाय हमारे भरतीय समाज में एक उपयोगी पशु माना जाता है। भारत में गाय का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। भगवान श्री कृष्ण मधुबन में ग्वालों के साथ गाय चराया करते थे । कामधेनु गाय के लिए वशिष्ठ मुनि और विश्वामित्र जी में युद्ध हुआ था । राजा दिलीप नंदिनी गाय की सुरक्षा के लिए अपने प्राण देने को भी तैयार हो गये थे। वास्तव में उस समय गाय को सोने से भी अधिक मूल्यवान माना जाता था। श्री कृष्ण भगवान ने अपने बचपन के दिन गायों के बीच में बिताए थे एवं श्री गुरू नानक देव जी ने भी अपने जीवन के बहुत से पल गाय तथा भेड़ों के साथ बिताये थे।

वैदिक काल से ही गाय हमारी संस्कृति तथा सभ्यता का प्रतीक मानी गयी है । वेदों में भी गायों की महत्ता का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार जिस स्थान पर गाय सुख पूर्वक निवास करती है वहां की भूमि तक पवित्र हो जाती है। यहां तक कहा गया है कि वह स्थान तीर्थ बन जाता है। हमारे व्यवहारिक जीवन में, मनुष्य के जन्म से मरण तक सभी संस्कारों में तथा व्रत पूजापाठ आदि शुभ कार्यों में गाय और गाय के दूध से उत्पादित पदार्थ/ उत्पादों का उपयोग आवश्यक बताया गया है। गाय अपनी उत्पति के समय से ही पूजनीय रही है। उसके दर्शन- पूजन तथा सेवा को एक महान

एवं पुण्य का कार्य माना जाता रहा है। शास्त्रों के अनुसार ''सर्वेदेवा: स्पर्ता देहे सर्वदेवमयी हि गौ:।'' गाय के शरीर में सभी देवताओं का निवास है। वेदों से लेकर रामायण, महाभारत ग्रंथो तक में गाय को बड़ा महत्व दिया गया है। रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने गाय का महत्व उल्लेखित किया है:

''विप्र धेनु सुर संत लीन्ह मनुज अवतार''

भगवान श्री कृष्ण के जीवन में भी उनके द्वारा गाय को सर्वोपरि महत्व दिया गया है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक की पंक्ति से स्पष्ट होता है:

''गावों ममाग्रत: सन्तु गावों मे सन्तु प्रष्ठत
गावों मे सर्वत: सन्तु गवां मध्ये व्सम्यहम''

अर्थात गाय मेरे आगे हो, मेरे पीछे हो, गाय मेरे सब ओर हो, मैं गाय के मध्य निवास करूं।

ब्रिटिश काल के दौरान रॉबर्ट क्लाइव ने यहां कृषि पर व्यापक शोध किया और उन्होंने पाया कि भारत में कृषि और कृषि से सम्बंधित सभी कार्य गाय की सहायता से पूरे किये जाते हैं। इसलिए रॉबर्ट क्लाइव ने सन् 1760 में कोलकता में पहला गाय-भैंस का कत्ल-खाना खोला था। जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़ने का था।

गोधन: ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़

भारतीय संस्कृति का प्रतीक होने के साथ-साथ गाय कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की भी रीढ़ है। गाय को भारत में धन का प्रतीक मानते हैं। भारतीय किसान गाय के गोबर का इस्तेमाल ईंधन और उर्वरक के स्रोत के रूप में करते हैं। गाय का गोबर एक कार्बनिक उर्वरक होता है जो अच्छी उच्च उपज देने में सहायक होता है। गाय, पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं के साथ स्थायी कृषि का एकमात्र आधार है ।

प्राचीन काल से ही किसी परिवार में स्वस्थ एवं अधिक संख्या में गोधन का होना सम्पन्नता का आधार माना जाता रहा है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की सम्पन्नता का मूल्यांकन गोधन से ही आंका जाता है। हमारे वेद-शास्त्रों, उपनिषदों तथा व्यवहारिक जीवन में गाय के दूध को अमृत की संज्ञा दी गयी है क्योंकि गाय के दूध में मानव के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए सभी आवश्यक तत्व पाए जाते हैं। गाय से उत्पन्न बछड़े बैल बनकर कृषि कार्य एवं भार ढ़ोने के कार्य में उपयोग होतें हैं। वर्तमान में भी हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बैलों का महत्व यथावत् बना हुआ है। गोधन से हमारी कृषि की उर्वरता बनाये रखने के लिए उत्तम खाद प्राप्त होती है।

कृषि उपज में रसायनिक खादों के लगातार उपयोग से प्रारंभिक अवस्था में कई वर्षो तक कृषि उपजों में तो महत्वपूर्ण वृद्धि होती है लेकिन कृछ समय में भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण होने लगती है। कभी-कभी रसायनिक खाद वाली भूमि उर्वर से ऊसर तक बन जाती है। अत: इस पहलू से भी गोधन, गोबर, गोमूत्र का आयिक कृषि उपज में विशेष महत्व है। भारत में भी ट्रैक्टरों का प्रचलन बढ़ रहा है परन्तु इससे बैलों की उपयोगिता समाप्त नहीं हुई। अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया में जहां भूमि की जोत का औसत लगभग प्रति किसान छ: हेक्टेयर का होता है उसकी तुलना में भारत की जोत की स्थिति बहुत ही छोटी (0.33 हेक्टेयर प्रति किसान) है। इसके कारण यहां यांत्रिक खेती की सम्भावना कम है। इसलिए हमारे देश में बैलो की उपयोगिता अधिक है।

गो -दुग्ध की पोषकता

गोधन से बैल तथा उत्तम खाद के अतिरिक्त उत्तम दूध की भी प्राप्ति होती है। भारत जैसे शाकाहारी देश में दूध पौष्टिकता का मूल आधार है। हमारे सामान्य जीवन के आहार में दूध, घी, मक्खन, पनीर, छाछ, खोआ, रबड़ी, दही आदि के उपयोग का विशेष महत्व है। भारतीय गाय के दूध को मां के दूध का दर्जा दिया गया है। दूध एक ऐसा पदार्थ है जिससे मनुष्य एवं पशुओं का जीवन प्रारम्भ होता है। सामान्य जीवन में पोषक तत्वों की पूर्ति में दूध का महत्वपूर्ण योगदान है। वैज्ञानिकों ने भी दूध की प्रकृति को लगभग सम्पूर्ण आहार माना है। दूध में उपलब्ध प्रोटीन (केसीन) तथा लैक्टोज (दुग्ध शर्करा) दूध के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में नहीं पाये जाते हैं। दूध में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज, लवण तथा विटामिन लगभग संतुलित मात्रा में पाए जाने के कारण ही प्रकृति के सभी खाद्य पदार्थों की तुलना में इसे सम्पूर्ण आहार की संज्ञा दी गई है। दूध के यह सभी अवयव स्वादिष्ट, पौष्टिक, पाचक एवं पोषक होते हैं। एक दिन की आयु के बच्चे से लेकर रोगग्रस्त एवं बूढ़े मनुष्य को भी दूध आसानी से पौष्टिकता प्रदान करता है। गाय के दूध से मनुष्य में रोग निरोधक क्षमता बढ़ती है।

अगर हम एक देश के रूप में प्रगति करना चाहते हैं और आगे बढ़ना चाहते हैं, तो हमें एक साथ मिलकर काम करना होगा। यदि हम अपनी भारतीय गायों के पुनरूद्धार के कार्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो हमारे

किसानों को कृषि समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है और साथ ही साथ हम अपनी भविष्य की पीढ़ियों को भी बचा सकते हैं। कृषि में भारतीय गायों का इस्तेमाल करने से किसान कार्बनिक खेती का उत्पादन बढ़ाकर, रसायन पर खर्च होने वाले पैसे बचा सकता है। अत: यह हमारा कर्तव्य है, हम अपने साथ-साथ अपने देश का स्वास्थ्य एवं उसकी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से सशक्त बनाने में अपना योगदान दें। तभी हम सभी खुश रह सकते हैं जिसका लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग को मिलेगा।

राष्ट्रीय विकास में बकरी पालन का सहयोग

उमेश कुमार शुक्ल

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना -485331

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के आधार पर दूध की माँग को देखते हुए यह आवश्यक है कि उपलब्ध अन्य साधनों पर भी उचित ध्यान दिया जाये। दूध उत्पादन की दृष्टि से गाय एवं भैंस के अलावा बकरी के दूध का भी विशेष महत्व है। बकरी पालन बहुउद्देशीय है एवं इसके निम्न लाभ हैं:

- दुग्ध उत्पादन एवं मांस उत्पादन,
- इनसे प्राप्त अन्य उत्पाद जैसे बाल, सींग, खुर आदि से दैनिक उपयोग संबंधी वस्तुओं की प्राप्ति,
- कम लागत के कारण गरीबी उन्मूलन में मुख्य भूमिका का होना,
- बकरी के दूध का टी.बी. जैसे रोगों से सुरक्षा,
- कम स्थान की आवश्यकता।

वर्तमान समय में बकरी पालन व्यवसाय से ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोग ही जुड़े हैं। वे अपनी दैनिक जरूरतों की पूर्ति हेतु कम संख्या में ही बकरी पालन करते हैं। हमारे देश में विश्व की लगभग 20 प्रतिशत बकरियां पाई जाती हैं ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वंय बकरी पाल कर इसे ''गरीबों की गाय'' की संज्ञा देते हुए अनुकरणीय प्रयास कर बकरी पालन को प्रोत्साहित किया था। दिन-प्रतिदिन जनसंख्या में हो रही वृद्धि, कृषि पर पड़ रहा अत्यधिक दबाव, निकट भविष्य में विकट खाद्यान्न संकट उत्पन्न होता दिख रहा है। ऐसे समय में बकरी पालन व्यवसाय अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण उपरोक्त समस्या का निराकरण करने में सहायक हो सकता है। बकरी पालन करना आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक है, क्योंकि बकरियों से दूध की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही साथ बकरियों के मांस की भी अच्छी मांग है।

बरबरी नस्ल की बकरियां

बकरी पालन व्यवसाय की प्रमुख विशेषताऐं

दुग्ध उत्पादन : बकरियां दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि कम समय (लगभग एक वर्ष) में ही प्रजनन योग्य हो जाती हैं। इनकी दूध देने की अवधि 3-4 महीने तक रहती है। ये वर्ष में दो बार प्रजनन करती हैं। अत: दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती हैं। अच्छी नस्ल की बकरियों का दुग्ध उत्पादन औसतन 3 लीटर से 4 लीटर प्रतिदिन तक हो सकता है। बकरी का दूध गाय व भैंस के दूध की भांति ही पौष्टिक व सुपाच्य होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी छोटे बच्चे को बकरी का दूध पिलाया जाता है तो उस बच्चे को कुछ बीमारियां उम्रभर नहीं होती हैं।

मांस उत्पादन : भारत में बकरी के मांस को बहुत लोग पंसद करते हैं। मांस उत्पादन की दृष्टि से बकरियां और भी महत्वपूर्ण हैं। जब बकरी पैदा होती है तब उसका वजन 1.5 किलोग्राम से 3 किलोग्राम तक होता है। जो छ: महीने में 13 से 14 किलोग्राम तक हो जाता है। बकरी के मांस की मांग को देखते हुए अधिकांश नर बच्चों को 5 से 8 महीने के अन्दर ही मांस के लिए बेच दिया जाता है।

- बकरियां अपने स्वभाव के अनुरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करती रहती हैं वे एक स्थान पर नहीं चरती हैं, जिससे चरागाह नष्ट नहीं हो पाते व समय से पुन: विकसित हो जाते हैं। बकरियां भोजन को शीघ्रता से प्राप्त कर लेती हैं। चाहे कंटीली झाड़ियां हों या असमतल मैदान, ऊँचे- नीचे अत्यधिक ढ़लान वाले पहाड़ आदि स्थानों पर भी ये अपना भोजन प्राप्त कर लेती हैं।
- बकरियों से प्राप्त बालों से उत्तम किस्म के कपड़ों का निर्माण किया जाता है, जिनका निर्यात विदेशों में करके विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाती है।
- बकरियों से प्राप्त खालों का उपयोग चर्मशिल्प में किया जाता है जिसकी देश एवं विदेश में अत्यधिक मांग है।
- बकरी पालन हेतु उपयोग की जा रही भूमि कृषि हेतु अत्यधिक उपयोगी हो जाती है, क्योंकि इनकी मेंगनी व पेशाब से मिट्‌टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। यही कारण है कि बकरियों को किसान अपने खेतों में उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए रखते हैं।

बकरी पालन को बढ़ावा देने हेतु उपाय

- देश की बढ़ती हुई दूध की मांग को देखते हुए यह आवश्यक है कि अच्छी नस्ल की बकरियां यथा बरबरी, बीटल, जमुनापारी आदि जो दुग्ध उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं, उनका विकास, उनके प्रजनन क्षेत्र में किया जाए जिससे बकरियों का विस्तार हो सके।
- वर्तमान में बकरी पालन से 5.2 प्रतिशत दूध प्राप्त किया जा रहा है जिसको और अधिक बढ़ाने के लिए प्रमुख नस्लों को चिन्हित करके उन्हें अधिक प्रोत्साहित एवं प्रसारित करके अधिकतम दुग्ध का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। उन क्षेत्रों में जहां पर बकरी पालन महत्वपूर्ण है बकरी जनन केन्द्रों का गठन किया जाना चाहिए।
- बकरी पालन व्यवसाय को अत्यधिक बढ़ावा देने के लिए प्रचार-प्रसार पर ध्यान देने की जरूरत है जिससे की पशु-पालकों में जो भी भ्रान्तियां या समस्याऐं हैं उन्हें दूर किया जा सके। इसे सिर्फ जीविकोपार्जन वाला व्यवसाय न समझ कर एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित किया जाए। इसके लिए अनुभवी, कुशल प्रसार कर्मियों की सेवायें लेकर पशुपालकों को बकरी पालन व्यवसाय की लाभकारी योजनाओं व विशेषताओं की विस्तृत जानकारी दी जानी चाहिए।
- बकरियों में दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रजनन सही तरीके से होना आवश्यक है। इसके लिए कृत्रिम गर्भधान को एक माध्यम बनाया जा सकता है। जिससे एक ही समय में कई बकरियों को गर्मी में लाकर कृत्रिम गर्भाधान करके दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की जा सके एवं उनकी देखभाल एवं रख-रखाव में आसानी हो।
- पशुपालकों को चुनकर उन्हें उच्च दुग्ध उत्पादन वाली नस्ल की बकरियों को उपलब्ध कराना चाहिए। इन पशुपालकों को बकरी पालन व्यवसाय के लिए हर सुविधा मुहैया कराई जाए। उन्हें उचित माध्यमों द्वारा समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जाए।
- बड़े-बड़े कार्यक्रमों में इन पशुपालकों की सफलता को प्रदर्शित

बकरी आवास

किया जाये ताकि अन्य पशुपालकों को प्रोत्साहन मिले तथा वे भी बकरी पालन व्यवसाय में अपनी रूचि दिखाएं। बकरी पालन को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों व गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अर्न्तगत बकरी पालन व्यवसाय हेतु उचित मात्रा में सस्ती दर पर पूंजी उपलब्ध करायी जाये जिससे बकरी पालन व्यवसाय को और बल मिल सके।

- बकरी पालन व्यवसाय में पशु की मृत्यु, बीमारी आदि से सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि पशुपालकों को बीमा सुविधा आवश्यक रूप से दी जाए। बकरी पालन व्यवसाय से खाद्यान्न संकट से भी निपटा जा सकता है व साथ ही यह ग्रामीणों को उचित पोषण स्तर प्रदान करने में भी सहायक है। बकरी पालन व्यवसाय जहां ग्रामीणों में विभिन्न रोजगार उत्पन्न करायेगा वहीं इससे सीमान्त कृषकों, लघु कृषकों व मजदूरों की आय में समुचित वृद्धि होगी । ग्रामीणों के आर्थिक स्तर को बढ़ाने से ग्रामीणों का शहर की ओर पलायन करना भी रूकेगा और ग्रामीण विकास के अवसर ज्यादा प्राप्त होगें।

बकरी पालन से आय

बकरी को गरीबों की गाय कहा जाता है। यह ऐसा पालतू पशु है जिसे कम जगह, कम खर्च पर पाला जा सकता है। बरबरी बकरी ऐसी नस्ल है जिसे गेहूँ, जौं का भूसा, चोकर, पत्तियां तथा घास खिलाकर पाला जा सकता है। बकरी के रख-रखाव में न्यूनतम खर्चा आता है। बेरोजगार युवक, कृषक, मजदूर महिलाएं, छोटी जोत के किसान, काश्तकार आदि बकरी पालन व्यवसाय के लिए राष्ट्रीयकृत बैंको से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

छोटे शरीर की बकरी कम आयु में ही गर्भित हो जाती है। प्रत्येक गर्भधारण पर इसमें दो बच्चे पैदा करने की क्षमता अधिक होती है, कभी-कभी तीन बच्चे भी प्राप्त हो जाते हैं। जनन के 21-42 अथवा 60 दिन के बाद बकरियां पुनः गर्भित हो जाती हैं। इनका प्रसव काल लगभग 5 माह का होता है। ये 12-14 माह की उम्र में वयस्क हो जाती हैं। 18-19 माह की उम्र में जनन करने के उपरान्त प्रति 7-8 माह पर वे फिर से जनन करती हैं। इस प्रकार 5 बकरियों के समूह से उत्पन्न नर बकरों एवं मादा बकरियों को बेच देने पर तथा ऋण धनराशि की ब्याज अदायगी पर भी बकरी पालक लगभग 600 रूपये अर्जित करते हुए 10-12 बकरियां भी रख लेते हैं।

यदि बकरी पालन किया जाए तो अवश्य ही सीमान्त कृषक हो या लघु सीमान्त कृषक, सभी को अच्छी आय प्राप्त हो सकती है। जब मनुष्य का स्वयं का विकास बलशाली होगा तो अपने आस-पड़ोस तथा गांव एवं देश को विकसित बनाने में अपना योगदान देगा, जिससे ग्रामीण विकास के साथ- साथ राष्ट्रीय विकास की सम्भावनाएं प्रबल होंगी।

पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों में बकरी पालन के लिए नस्ल का चुनाव एवं प्रबंधन

मनोज कुमार सिंह, सोविक पाल, नवीन कुमार एवं अनुपम कृष्ण दीक्षित

भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान मखदूम, मथुरा-281122

पिछले एक दशक से देश में बकरी पालन व्यावसायिक रूप लेता जा रहा है और आने वाले समय में यह और भी व्यापक एवं संगठित होगा। देश के विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों में बकरी की अलग-अलग नस्लों के फार्म खोले जा रहे हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मांस एवं प्रजनक बकरियों का उत्पादन है। जिन बकरी पालकों ने नस्ल का चुनाव नस्ल की अनुकूलता एवं जानवरों की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर किया है उनके जानवरों का स्वास्थ्य, उत्पादकता अच्छी रहती है एवं लाभ अधिक मिलता है परन्तु जहां चयनित नस्ल का परिवेश के प्रति अनुकूलता का ध्यान नहीं रखा जाता है वहाँ लाभ कम तथा जोखिम अधिक होता है। प्रस्तुत लेख में पूर्वी एवं उत्तर पूर्वी राज्यों में व्यावसायिक बकरी पालकों को नस्ल विशेष के चुनाव की जानकारी दी जा रही है।

हमारे पूर्वजों ने देश के विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु, चारे-दाने की उपलब्धता तथा मानव मांग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पशुओं का पालन किया और सैकड़ों वर्षों के निरंतर प्रयास से बकरियों की विभिन्न नस्लों का विकास किया। ये नस्लें अपने क्षेत्र की जलवायु में अधिकतम उत्पादन देती हैं तथा अधिकाधिक संख्या में जीवित रहती हैं। साथ ही समय के साथ क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली बकरियों ने उस क्षेत्र में पाये जाने वाले विभिन्न रोगों के प्रति रोग प्रतिरोधकता अर्जित कर ली है। कुछ क्षेत्रों में पायी जाने वाली बकरियों की नस्लों की उत्पादकता को ग्रन्थों में बहुत ही कम दर्शाया गया है और उन्हें निम्न उत्पादन की श्रेणी में रखा गया है। जबकि वास्तव में बहुत सी नस्लों की उत्पादन क्षमता से हम अनभिज्ञ हैं। अपनी उच्चतम उत्पादन क्षमता प्रदर्शित करने के लिए जिस प्रकार के प्रजनन, प्रबंधन, राशन, आवास, देखरेख आदि की आवश्यकता होती है वह उन्हें उपलब्ध नहीं हो पा रही है। अधिकांश बकरी पालक उसकी उत्पादकता के लिए आवश्यक जरूरी खाद्य सामग्री का एक चौथाई भाग भी प्रदान नहीं करते हैं। फलस्वरूप उनका उत्पादन स्तर एवं चुनाव प्रक्रिया बाधित हो रही है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली कुछ नस्लों की उत्पादकता को तालिका-1 में दर्शाया गया है। कुछ नस्लों जैसे- चेगू, गद्दी व गंजम में कम बहुप्रसवता दर के कारण इन बकरियों को सैकड़ों वर्षो से संतुलित आहार, समुचित आवास एवं प्रजनन प्रबंधन से वंचित रखा गया है। आंकड़े बताते हैं कि मरूस्थलीय राजस्थान में पायी जाने वाली मारवाड़ी नस्ल की बकरियाँ समुचित आहार, आवास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में 1.5 से 2 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं। बहुप्रसवता दर 25-30% से बढ़कर 45-50% तक हो जाती है तथा 12 माह की उम्र में वजन 15-20 किग्रा से बढ़कर 30-35 किग्रा हो जाता है। परन्तु समुचित आहार, आवास एवं देखरेख न किये जाने तथा बकरियों को केवल गोचर में

महिला बकरी पालक अपनी बकरियों के साथ

बहुप्रसवी ब्लैक बैंगाल मादा बकरी

तालिका 1. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली बकरियों की कुछ प्रमुख नस्लों की उत्पादकता

नस्ल	12 माह की उम्र पर शरीर भार (किग्रा)	बहु प्रसवता दर (%)	दुग्ध उत्पादन (लीटर/ब्यांत)
ब्लैक बंगाल	18-25	80-85	25-45
जखराना	35-48	60-65	175-200
ओस्मानाबादी	30-48	70-75	150-200
बरबरी	35-48	70-85	125-150
झालावाड़ी	35-45	55-60	125-175
सूरती	35-40	55-65	125-175
गद्दी	25-30	10-15	40-50

चराई पर रखे जाने पर उत्पादकता आधी या उससे भी कम रह जाती है। समुचित आहार के अभाव में बड़ी संख्या में बकरियां कमजोर व रोगग्रस्त होकर मर जाती हैं।

बहुत से नवागन्तुक बकरी पालक भ्रमित हैं क्योंकि बकरी की नस्ल का चुनाव उस क्षेत्र विशेष के वातावरण के प्रति अनुकूलता एवं उपयोगिता का ध्यान रखे बिना कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर झारखंड, बिहार, आंन्ध्र प्रदेश, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में जमुनापारी, बरबरी, जखराना, सिरोही आदि नस्लों के फार्म खोल रहे हैं। विशषकर पूर्वी राज्यों के किसान उत्तर भारत की बड़े आकार वाली बकरियों की नस्लों (जमुनापारी) से छोटे आकार की ब्लैक बंगाल नस्ल की बकरियों का संकरण करवा रहे हैं। संकरण करवाने का मुख्य कारण बंगाल नस्ल का छोटा आकार है। इसी प्रकार दक्षिणी पठार एवं दक्षिणी राज्यों जैसे- महाराष्ट्र, आंन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में भी वहाँ की क्षेत्रीय बकरी ओस्मानाबादी को जमुनापारी एवं सिरोही आदि नस्लों से क्रास करवा रहे हैं तथा ओस्मानाबादी नस्ल की उपेक्षा करके बरबरी, जखराना, जमुनापारी नस्ल की बकरियों के फार्म खोल रहे हैं। शुद्ध लाभ एवं वातावरणीय उपयोगिता को देखते हुए उत्तर, पूर्वी एवं दक्षिणी राज्यों की बकरियों की उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ का तालिका 2 में विष्लेषण किया गया है। तालिका में दर्शाये गये आकड़ों से स्पष्ट है कि ब्लैक बंगाल एवं ओस्मानावादी उत्कृष्ट बकरियों की नस्ल हैं तथा अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोत्तम उत्पादन एवं लाभ देती हैं। इनमें किया गया आनुवंशिक सुधार पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ेगा और साथ ही बड़ी मात्रा में हो रहे वातावरणीय परिवर्तन का प्रभाव भी न्यूनतम होगा।

बिहार, बंगाल, त्रिपुरा, असम, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ जैसे सभी उत्तर-पूर्वी राज्यों के साथ-साथ बांग्लादेश, नेपाल व भूटान जैसे देशों के लिए भी ब्लैक बंगाल बकरी की सर्वोत्तम नस्ल है। यह न केवल भारत की बल्कि विश्व की एक उत्कृष्ट मांस उत्पादक नस्ल है। इसकी बहुप्रसवता दर, कम उम्र में ही बच्चे देने की क्षमता, दो ब्यांतों के बीच कम अन्तराल, भोज्य पदार्थ को मांस में बदलने की उच्च क्षमता, उच्च मांस एवं हड्डी अनुपात, 9-10 माह की उम्र में व्यस्क होने की आनुवंशिक योग्यता एवं सर्वोत्तम श्रेणी की मांस एवं खाल इसे एक बेहतरीन मांस नस्ल की बकरी बनाते हैं। पूर्वी राज्यों में मानसूनी वर्षा से खेतों में पानी भरने, यहां की क्षारीय मृदा एवं लम्बी अवधि तक वर्षा होने की स्थिति में ब्लैक बंगाल नस्ल की बकरियों पर अन्य नस्लों के मुकाबले प्रतिकूल दबाव कम रहता है, ये इस वातावरण के प्रति सहिष्णु हैं जबकि उत्तरी भारत की जमुनापारी, बरबरी, बीटल आदि नस्लों की बकरियाँ इन परिस्थितियों में अधिक प्रभावित होती हैं। गर्म-आद्र जलवायु में आंन्त्र परजीवी भी बहुत सक्रिय रहते हैं। ब्लैक बंगाल नस्ल में अन्य बकरी नस्लों की अपेक्षा बेहतर आंन्त्र परजीवी रोगप्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है।

ब्लैक बंगाल बकरी का आकार एवं शारीरिक भार पश्चिमी एवं उत्तरी भारतीय राज्यों की बकरीयो की नस्लों के मुकाबले छोटा होता है तथा माँ के नीचे दूध भी कम होता है। कभी-कभी बकरी द्वारा दिये गये बच्चों की संख्या 4 या 5 तक हो जाती है, उस स्थिति में दूध की आपूर्ति अन्य बकरियों से करनी पड़ती है। हालांकि बंगाल नस्ल के आकार, वजन एवं

फसल कटाई के उपरान्त चराई करती बकरियां

तालिका 2. बकरियों की 3 मुख्य नस्लों का तुलनात्मक अध्ययन

लक्षण	ब्लैक बंगाल	बरबरी	जमुनापारी
मूल क्षेत्र	बंगाल, झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़ एवं ओडिशा	आगरा मण्डल (उत्तर प्रदेश)	इटावा (उप्र) एवं ग्वालियर (मप्र) संभाग
वातावरणीय उपयोगिता	शीतोष्ण क्षेत्र	शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्र	अर्ध-शुष्क क्षेत्र
व्यस्क मादा एवं नर की कीमत (₹)	3000-4000	5000-6000	6000-8000
प्रथम बार ब्यांत पर उम्र (माह)	12	14	20
प्रति ब्यांत बच्चे देने की दर	2.5	1.6	1.4
तीन वर्ष में कुल बच्चे	11	6.4	5
बच्चों की मृत्युदर (%)	10	5	5
कुल प्राप्त बच्चे	10	6	4.75
ब्यांत अन्तराल (माह)	8	9	10
औसत दुग्ध उत्पादन (लीटर/ब्यांत)	30	80	135
12 माह की उम्र में बच्चों का वजन (किग्रा)	15	22	26
प्रति वर्ष एक मादा द्वारा कुल उत्पादित वजन (किग्रा)	49.5	44	41.6
प्रति वर्ष बिक्री हेतु उपलब्ध दूध (लीटर)	00	40	78
बच्चों के विक्रय से प्राप्त आय (₹)*	9900	8800	8320
दूध विक्रय से प्राप्त आय (₹)	00	1000	950
प्रति वर्ष मादा का सघन पद्धति में प्रबंधन खर्च (₹)	3840	4008	4556
शुद्ध लाभ प्रतिवर्ष (₹)	6000	5792	5714

* वजन का मूल्य ₹ 200.00 प्रति किलो

दूध देने की क्षमता में 25-30 प्रतिशत की वृद्धि बड़ी सरलता से उच्च क्षमता वाले नरों से प्रजनन कराकर, संतुलित समुचित आहार, आवास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन द्वारा 2 से 3 पीढ़ियों में की जा सकती है। यह सुधार पीढ़ी दर पीढ़ी स्थाई रहेगा तथा उपरोक्त प्रयास से ब्लैक बंगाल नस्ल की कम उम्र में ब्याने, दो ब्याँतों में कम अंतराल, बहुप्रसवता दर आदि आनुवंशिक गुणों पर विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। जबकि बंगाल नस्ल की बकरियों को उत्तरी- पश्चिमी राज्यों की बकरियों से संकरण कराने पर वर्णसंकर मादाओं की जनन क्षमता बहुत अधिक प्रभावित होगी। वर्णसंकर बकरियां क्षारीय मृदा, जल भराव एवं अंत: परजीवियों से होने वाले रोगों के लिए बंगाल नस्ल की बकरियों की तुलना में कम रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली होती हैं। शारीरिक भार एवं दूध देने की क्षमता को बढ़ाने के लिए उच्च क्षमता वाले मादा एवं नरों को चिन्हित करके उन्हें एवं उनके उच्च गुणवत्ता वाले बच्चों को चुनाव करते हुए प्रजनन में अधिकाधिक प्रयोग करना होगा। साथ ही ऐसे उच्च क्षमतावान पशुओं के खान-पान, रख-रखाव एवं स्वास्थ्य पर भी विशेष ध्यान रखना होगा। अधिक प्रजनन एवं उत्पादन के लिये समुचित पोषण न मिलने पर जानवर कमजोर एवं बीमार हो जाऐंगे। अत: अधिक उत्पादन स्तर वाले जानवरों का विशेष ध्यान रखना होगा। ब्लैक बंगाल बकरियों में कम दुग्ध उत्पादन एवं बच्चों की अधिक मृत्युदर के लिये कुपोषण एवं कुप्रबंधन एक प्रमुख कारण है।

इसी अनुभव का संज्ञान लेते हुए यूरोप की अत्यधिक दूध देने वाली बकरियाँ जैसे- एल्पाईन, सानेन, टोगेनवर्ग को राजस्थानी नस्ल सिरोही से संकरण कराने की महत्वाकांक्षी योजना को बन्द करना पड़ा। चूंकि दूध इत्यादि बढ़ने से जो फायदा हो रहा था वह अत्यधिक बीमारी एवं मृत्युदर से हुए नुकसान की तुलना में बहुत कम था। इसी प्रकार बिहार, झारखंड, बंगाल, असम आदि राज्यों में पाई जाने वाली छोटे आकार की बकरी की नस्ल ब्लैक बंगाल को उत्तर भारत की बड़े आकार की जमुनापारी, बीटल एवं सिरोही से संकरण कराया गया। अनुसंधानों के नतीजों में लाभ की अपेक्षा नुकसान अधिक पाया गया तथा सिफारिश की गई कि अपने ही राज्यों/क्षेत्रों में पायी जाने वाली बंगाल नस्ल को चयनित करके सुधार किया जाये जो कि स्थायी होगा, अतिरिक्त लागत रहित होगा तथा पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता जायेगा।

प्रक्षेत्र में चरती बकरियाँ

व्यावसायिक बकरी पालकों को यह सलाह दी जाती है कि वे अपने क्षेत्र या उसके आसपास के समवातावरण में पायी जाने वाली नस्ल का ही चुनाव करें। सावधानी यह बरतनी है कि ऐसे प्रजनक नर एवं मादाओं का चयन करें जिनका शारीरिक भार एवं जनन की आनुवंशिक योग्यता उत्कृष्ट हो अर्थात ब्लैक बंगाल नस्ल में ऐसे नर मिलेंगे जिनका 12 माह की उम्र में वजन 22 किग्रा या उससे भी अधिक होगा तथा ऐसे भी जानवर मिलेंगे जिनका वजन 08 किग्रा ही होगा। प्रतिदिन बकरी के नीचे दूध 100 मिली तथा 500 मिली भी होगा। अतः अधिक उत्पादन स्तर वाले जानवरों को ज्यादा से ज्यादा प्रजनन में भागीदारी करें। दूसरी बात जिस पर ध्यान देना होगा वह यह है कि प्रतिदिन का प्रबंधन जैसे- खान-पान, आवास, सफाई, स्वास्थ्य, प्रजनन, समय पर टीकाकरण एवं चिकित्सा। अन्य महत्वपूर्ण स्तंम्भ हैं : सही उम्र में तथा उचित अवसर पर बकरियों का विक्रय एवं निष्कासन। अन्तः प्रजनन को सीमित रखने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले एवं नस्ल के अनुरूप नरों को दूसरे फार्म/गॉव से समय-समय पर खरीदकर बदलते रहना चाहिए। जब भी विषम वातावरण की बकरियों को बकरी पालन के लिये चुना जाता है तो 20-35 प्रतिशत उत्पादकता कम हो जाती है एवं मृत्युदर 10 से 20 प्रतिशत बढ़ जाती है, फलस्वरूप लाभ में भारी गिरावट हो जाती है। उपरोक्त बिन्दुओं पर ध्यान देने पर निश्चित रूप से बकरियों की उत्पादकता एवं लाभ कई गुणा बढ़ जायेगा।

पशुओं में पुनः गर्भाधान (रिपीट ब्रीडर): समस्या एवं समाधान

सत्यनिधि शुक्ला एवं अभिषेक बिसेन

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, नानाजी देशमुख पशु-चिकित्सा विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001

साधारणतया हर गाय भैंस को ब्याने के 50 से 70 दिन के बीच नियमित रूप से गरम होना शुरू कर देना चाहिए। इस समय में पशु गरम होने के लक्षण स्पष्ट होते हैं तथा अच्छे सांड़ या कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा इसे सफलतापूर्वक गाभिन कराया जा सकता है। जब पशु गाभिन हो जाता है तो सामान्यत: 20-22 दिन बाद गरम होने के लक्षण दिखाना बन्द कर देता है लेकिन कुछ पशु गाभिन होने के बावजूद फिर से गरम होने के लक्षण दिखाते हैं। पशुचिकित्सक ही इस पशु की जांच द्वारा सही स्थिति बता सकते हैं। पशु के गर्भ न ठहरने पर जब गाय/भैंस 3 से अधिक बार 20 से 25 दिन के अन्तर पर प्रत्येक बार गरम होने के लक्षण दिखाती है और बार-बार गर्भाधान का प्रयास करने पर भी गाभिन नहीं हो पाती, तब इस तरह के पशु को रिपीट ब्रीडर पशु कहा जाता है, जिसके लिए समुचित चिकित्सा और देखभाल की आवश्यकता होती है। पशुपालकों को चाहिए कि इस तरह के पशुओं को अलग रखें तथा उनका इलाज यथा शीघ्र किसी पशुचिकित्सक से करायें।

रिपीट ब्रीडर पशु में कोई स्पष्ट या विशेष बीमारी के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते । केवल एक ही महत्वपूर्ण बात सामने आती है कि पशु हरेक 20-22 दिन के बाद गर्मी में आता है और गाभिन कराने के बाद भी गर्भ नहीं ठहरता है। पशु देखने में स्वस्थ दिखता है एवं दूध भी देता है। दूध की मात्रा ब्यांत के बाद समय बढ़ने के साथ क्रमश: कम हो जाती है। पशु के खाने-पीने में भी कोई कमी नहीं दिखाई देती और न कोई अन्य कष्ट या परेशानी होती है।

रिपीट ब्रीडर की जांच करते हुए पशु चिकित्सक

गर्भ न ठहरने के कारण एवं निवारण

पशुओं के गर्भ न ठहरने के अनेक कारण होते हैं जिनमें कुछ मुख्य निम्न हैं:

- पशु के बच्चा पैदा करते समय उसके जननांगों में विभिन्न प्रकार के संक्रामक कीटाणु प्रभाव डाल सकते हैं।
- ब्यांत काल के समय पशु की बच्चेदानी का मुंह खुलकर काफी बड़ा हो जाता है। अत: किसी भी संक्रामक रोग के कीटाणु के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है, खासकर जब किसी ग्वाले, मजदूर या अनजान व्यक्ति द्वारा पशु के बच्चे को खींचकर निकलवाया जाता है। जब ब्याने के बाद पशु की उचित देखभाल नहीं हो पाती तब भी अनेक रोगों का प्रकोप हो जाता है। अगर पशु ने ब्याने के समय 60 से 70 दिन तक गरम होने के कोई लक्षण नहीं दिखाये हैं तो तुरन्त निकट के पशु चिकित्सक द्वारा पशु की जांच करा कर उचित इलाज कराना चाहिए।
- यदि पशु के बच्चा पैदा करते समय कोई कठिनाई हो रही होती है या बच्चा बाहर नहीं आ पा रहा हो तो पशु के जननांगो के मार्ग से अनेक संक्रामक कीटाणु प्रवेश कर जाने का भय रहता है । ऐसे समय में विशेष सावधानी की जरूरत होती है । इसके लिए आवश्यक साफ-सफाई रखना जरूरी होता है। किसी ग्वाले, मजदूर या किसान की सहायता लेकर पशुपालक पशु के लिए खतरा बढ़ा देते हैं क्योंकि इन लोगों को सावधानी रखने योग्य बातों के बारे में बहुत कम मालूम होता है।
- सामान्यत: गाय/भैंस के बच्चा पैदा होने के 10 से 12 घंटे के भीतर, अपरा जेर या प्लेसेंटा जो कि बारीक झिल्ली होती है। (गर्भावस्था में बच्चे को बच्चेदानी की भीतरी सतह से अलग रखने के लिए) जननांग के रास्ते बाहर आ जाती है। प्लेसेंटा या अपरा कभी-कभी 24-48 घंटे या अधिक समय के बाद

भी बाहर नही गिरती। यह भी होता है कि बाहर गिरने के तुरन्त बाद गाय/भैंस इसे खा जाती हैं। कुछ स्थितियों में विशेषकर सांझ या रात के समय ब्याने के बाद पशु पालक समझता है कि जेर अभी गिरी नहीं है। जेर न गिरने की दशा में बच्चेदानी में अनेक संक्रामक कीटाणु पहुंच जाते हैं। अपरा के सड़ने-गलने के कारण खून के कतरे जमा होने से भी बच्चेदानी में काफी मैल व गंधदार रंगीन पानी जमा हो जाता है, जिससे पशु को बुखार हो जाना, दूध कम होना, सुस्त हो जाना आदि लक्षण मिलते हैं। अत: जेर रूक जाने पर उसे निकालते समय ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिए अन्यथा भीतर काफी खून जमा होता है व बच्चेदानी भी फट सकती है। ऐसी स्थिति में पशु के जीवन को खतरा बढ़ जाता है।

- कभी-कभी गाय/भैंस का गर्भकाल पूरा होने से पहले ही बच्चा पैदा हो जाता है। ऐसी स्थिति में अपरा जेर बच्चेदानी में ही रहकर सड़ जाती है व अनेक संक्रामक कीटाणु खून से होकर शरीर के अन्य भागों में प्रकोप बढ़ाकर पशु के जीवन को खतरा बढ़ा देते हैं। इस दशा में पास के पशुचिकित्सक से शीघ्र जांच कराकर उचित इलाज कराना जरूरी होता है, अन्यथा पशु के ''रिपीट ब्रीडर'' हो जाने की संभावना बढ़ जाती है।
- कभी-कभी गर्भावस्था काल के बीच में अनेक कारणों से गर्भ बच्चेदानी में ही मर जाता है जिससे अनेक घातक पदार्थ पशु के शरीर में फैलकर उसके जीवन को खतरे में डाल सकते हैं। ऐसा शक होने पर जल्दी ही किसी पशुचिकित्सक से जांच कराके उचित चिकित्सा कराना आवश्यक होता है।
- पशु जिस स्थान पर बच्चे को जन्म देने के लिए रखा गया है उस स्थान की सफाई व स्वच्छता के द्वारा पशु के जननांगों के द्वारा फैलने वाले रोगों पर नियंत्रण संभव है। अत: इस कार्य के लिए पशु को खुले, हवादार स्थान में जमीन पर कंकड़-पत्थर रहित घास या पक्के फर्श पर भूसा फैला देना लाभप्रद होता है।
- पशु जननांगो से संबंधित विशेष जीवाणु जैसे ब्रुसेला, ट्राइकोमोनास, लिस्टीरिया, केम्पाइलोबैक्टर (विब्रियो) आदि के संक्रमण से भी पशु में गर्भ नहीं ठहरता । इस संबंध में पशु चिकित्सक से परामर्श व चिकित्सा आवश्यक है।
- खनिज लवण तथा विटामिन्स की कमी के कारण भी दुधारू पशुओं में गर्भ नहीं ठहरता है। इसलिए उचित मात्रा में इन सभी तत्वों का पशु आहार में होना बहुत जरूरी है। अगर दुधारू पशुओं के दाने में 50 ग्राम खनिज लवण (मिनरल मिक्सचर) रोजाना दिया जाये तो इस कमी को दूर किया जा सकता है। यह दवाओं की दुकान से खरीदा जा सकता है। प्रत्येक खनिज लवण तथा विटामिन की कमी के कुछ लक्षण होते हैं और इस संबंध में पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।
- गाभिन पशु की उचित देखभाल न करना भी पशु में गर्भ न ठहरने का एक महत्वपूर्ण कारण होता है।
- कभी-कभी पशुओं के अण्डाशय में कमी अथवा हार्मोन्स की कमी के कारण भी गर्भ नही ठहरा पाता है, ऐसे कारणों का संदेह होने पर पशु चिकित्सक की सलाह लेकर इलाज करा लेना चाहिए।

पशुपालक उपरोक्त सभी बातों का ख्याल रखते हुए अपने जानवरों का उचित प्रबंधन करके इस व्यवसाय से अधिक लाभ अर्जित कर सकता है।

शूकर पालन : एक लाभकारी व्यवसाय

उमा कांत वर्मा[1], अजीत सिंह[1], नदीम शाह[1] एवं विकास वोहरा[2]

[1]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, 132001

[2]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001

अपनी आजीविका व आय के लिए पशुपालकों द्वारा उपयोग किए जाने वाले पशुओं में शूकर पालन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। शूकर पालन आजीविका व पोषण सुरक्षा की दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए मुख्यत: देश के उत्तर पूर्वी राज्यों में अधिक लोकप्रिय है। शूकर पालन की बढ़ती लोकप्रियता के पीछे कम कीमत में, कम समय में अधिक लाभ व शूकर द्वारा साधारण आहार को मांस में परिवर्तित करने की बेहतर क्षमता को मुख्य कारण माना गया है। मादा शूकर एक समय में 8 से 14 बच्चों को जन्म देती है और उनकी प्रजनन आयु लगभग 6 महीने होती है तथा मांस हेतु उपयोग किए जाने वाली शूकरों की बाजार में बेचने की आयु लगभग 8 महीने होती है। इसके अलावा शूकर की चर्बी, त्वचा, बाल व हड्डियों का उपयोग करके अन्य उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जिससे अतिरिक्त आय भी हो

तालिका 1. शूकर की पंजीकृत नस्लें

	नस्ल	प्रजनन क्षेत्र	पंजीकृत क्रमांक संख्या
	घूंगरू	पश्चिम बंगाल	INDIA-PIG-2100-GHOON ROO-09001
	नियांग मेघा	मेघालय	INDIA-PIG-1300-MONIYONG MAGHA-09002
	अगोंडा गोआन	गोवा	INDIA-PIG-3500-AGONDA GOON-09003
	टेनेई-वो	नागालैंड	INDIA-PIG-1400-TENYI VO-09004
	निकोबारी	अण्डमान व निकोबार	INDIA-PIG-3300-NICOBORI-09005
	डूम	असम	INDIA-PIG-0200-DOOM-09006

तालिका 2. शूकरों की सख्ंया (000, में)

देशी नस्ल के शूकर	गणना वर्ष		प्रतिशत दर
	2007	2012	परिवर्तन
नर	4134	3681	-10.96
मादा	4610	4156	-9.85
कुल देशी शूकर	8744	7837	-10.37
कुल शूकर	11133	10294	-7.54
संकर नस्ल के शूकर			
नर	1209	1283	6.12
मादा	1180	1174	-0.51
कुत संकर नस्ल के शूकर	2389	2456	32.580

सकती है। शूकर पालन से न केवल बेरोजगार युवक आत्मनिर्भर बनते हैं, बल्कि इसमें महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कर उन्हें भी आर्थिक दृष्टि से अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

तालिका 2 से यह स्पष्ट है कि संकर नस्ल के शूकरों की संख्या देशी नस्ल के शूकरों की तुलना में पिछले गणना वर्ष (2007) की तुलना में वर्ष 2012 में अधिक है इसके लिए देशी नस्ल के शूकरों का शरीरिक विकास मुख्य कारण है। देशी नस्ल के शूकरों का शरीरिक भार 18 महीने में लगभग 35 से 40 किलोग्राम ही हो पाता है जबकि संकर नस्ल के शूकर का शरीरिक भार लगभग 90 से 100 किग्रा हो जाता है। अत: संकर नस्ल के शूकर पालना अधिक फायदेमंद होता है।

शूकर आहार प्रबंधन

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शूकर एक सर्वाहारी पशु है। शूकर में रूमेन नही होता इसलिए वो रेशेयुक्त आहार का उपयोग नही कर पाता है, इसलिए शूकर आहार में सांद्रित आहार दिया जाना चाहिए जिसमें अनाज मुख्यत: पिसा हुआ हो।

दैनिक आहार मात्रा

क्रीप वर्ग के शूकर (12 से 25 किलोग्राम शरीर भार) को प्रतिदिन लगभग 1 से 1.5 किलोग्राम दाना मिश्रण दिया जाना चाहिए। ग्रोअर वर्ग के शूकर (26 से 45 किलोग्राम शरीर भार) को प्रतिदिन लगभग 1.5 से 2 किलोग्राम दाना मिश्रण दिया जाना चाहिए। फिनिशर वर्ग के शूकर (46 से 100 किलोग्राम शरीर भार) को लगभग 2.5 किलोग्राम दाना मिश्रण दिया जाना चाहिए। दाना मिश्रण को सुबह व अपराह्न, दो बार दिया जाना चाहिए।

शूकर आवास प्रबंधन

शूकर को असामान्य मौसम जैसे अत्यधिक गर्मी, सर्दी व बरसात से बचाने के लिए उचित आवास की व्यवस्था की जानी चाहिए। शूकर आवास दैनिक कार्यों को सुगमता से चलाने में मदद करता है तथा शूकर की उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता को बढ़ाने में भी सहायक होता है। आवास प्रंबधन में पर्याप्त जगह हो, सस्ता हो व साफ-सफाई आसानी से हो सके इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

तालिका 3. विभिन्न वर्ग के शूकर हेतु आहार

अवयन	क्रीप राशन (0 से 25 किग्रा)	ग्रोवर राशन (26 से 45 किग्रा)	फिनिशर राशन (46 से 100 किग्रा)
मक्का	60.0 भाग	64.0 भाग	60.0 भाग
बादाम खल्ती	20.0 भाग	15.0 भाग	10.0 भाग
चोकर	10.0 भाग	12.5 भाग	24.5 भाग
मछली चूर्ण	8.0 भाग	6.0 भाग	3.0 भाग
लवण मिश्रण	1.5 भाग	2.5 भाग	2.5 भाग
नमक	0.5 भाग	-	-
कुल मात्रा	100 भाग	100 भाग	100 भाग

तालिका 4. विभिन्न वर्ग के शूकरों हेतु जगह की आवश्यकता

वर्ग	ढ़का क्षेत्र (मी^{2})	खुला क्षेत्र (मी^{2})
वयस्क शूकर	6-7.5	8.8-12
ब्यांत वाले शूकर	7.5-9	8.8-12
वीनर शूकर	0.9-1.8	0.9-1.2
वयस्क मादा	1.8-2.7	1.4-1.8

आवास का फर्श सीमेंट व कंक्रीट का बना होना चाहिए और उचित ढ़लान भी होना चाहिए (लगभग 3 सेमी प्रत्येक 2 मीटर लम्बाई पर)।

शूकर आवास की स्वच्छता व कीटाणुशोधन

शूकर आवास की स्वच्छता बीमारियों से बचाने के लिए अति महत्तवपूर्ण है। इसके लिए निम्न बातों का अनुसरण किया जाना चाहिए:

- शूकर के गोबर (मल) को नियमित तौर पर हटाते रहना चाहिए और फर्श तथा दीवार पर लगे गोबर को भी अच्छी तरह रगड़कर साफ कर देना चाहिए।
- खान-पान व पानी पीने के टैंक को भी नियमित तौर पर साफ किया जाना चाहिए।
- दीवार व पानी पीने के टैंक में चूने की पुताई करनी चाहिए।
- गोबर व बिछावन सामग्री को अच्छी तरह गड्ढ़े में दबा दिया जाना चाहिए जिससे बीमारियों को फैलने से रोका जा सके।
- शूकर आवास में पर्याप्त प्रकाश व वायु (वेन्टीलेशन) के आदान-प्रादान को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

शूकर स्वास्थ्य प्रबंधन

शूकर पालन को अधिक लाभकारी बनाने हेतु शूकर स्वास्थ को मुख्य वरीयता दी जानी चाहिए। शूकर में होने वाली बीमारियों जैसे- स्वाइन फ्लू, स्वाइन प्लेग, हॉग कालरा और अन्य परजीवी बीमारियों आदि की रोकथाम की जानी चाहिए। इसके लिए उचित समय पर टीकाकरण, साफ-सफाई को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

शूकर पालन आज एक बड़े व्यवसाय का रूप लेता जा रहा है क्योंकि इस व्यवसाय में कम समय में कम कीमत में ही शीघ्र आय मिलने लगती है। लेकिन अभी भी शूकर के आनुवंशिक विकास हेतु और शोध किये जाने तथा शूकर पालकों को उचित जानकारी देने के साथ-साथ शूकर के लिए आहार उपलब्ध कराना व क्रय-विक्रय हेतु बाजार स्थापित किये जाने की आवश्यकता है, जिससे शूकर पालकों को उचित दाम मिल सके और उनकी आर्थिक स्थिति और मजबूत हो सके।

भैंसों में प्रजनन की प्रमुख समस्यायें एवं उनका समाधान

एस एन शुक्ला, कृष्ण कुमार एवं प्रत्यूष कुमार गुप्ता

पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001

भैंसों का ठीक समय पर गाभिन न होना एक आम समस्या है। प्रत्येक पशुपालक की यह इच्छा रहती है किउसकी भैंस हर वर्ष बच्चा दे जिससे उससे लगातार दूध मिलता रहे परन्तु किसान भाई इस समस्या से परेशान रहते हैं कि उनकी भैंस दो वर्ष में केवल एक बच्चा देती है। भैंस में दो ब्यांत के बीच अधिकतम 13–14 महीने का अंतर होना चाहिए । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ब्याने के बाद भैंस दोबारा बच्चा 400 दिन के अंदर दे, तभी भैंस पालन फायदेमंद है। एक अनुमान के अनुसार यदि भैंस के ब्यांत का अंतर एक दिन बढ़ जाता है तो किसान को रोजाना लगभग 100 रूपए का नुकसान होता है। ब्यांत अंतराल 13–14 महीने रहने पर भैंस अपने जीवनकाल में अधिक बच्चे देगी और अधिकतर समय दूध उत्पादन में भी रहेगी ।

मादा पशु की जनन क्षमता इसी से परखी जाती है कि उसके दो ब्यांत के बीच कितना अंतर है। दो ब्यांत के बीच का अंतराल दो प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है। पहला प्रसव से गाभिन होने तक का समय तथा दूसरा गाभिन होने से लेकर बच्चा देने तक का समय जो कि निश्चित रहता है। इस दूसरे अंतराल को गर्भकाल कहते हैं। भैंस में यह लगभग 310 दिन होता है। अत: हम कह सकते हैं कि यदि भैंस बच्चा देने के 90 दिन के अंदर गाभिन हो जाये तभी 310 दिन गर्भकाल को जोड़कर, अगला बच्चा उससे 400 दिन के अंतराल पर प्राप्त किया जा सकता है।

रिपीट ब्रीडिंग

भैंसों की एक प्रमुख समस्या इसका बार–बार गर्भाधान कराने पर भी गाभिन न हो पाना है। आमतौर पर ऐसी भैंस हर 21–22 दिन बाद गर्मी में आती है और गाभिन कराने पर रूकती नहीं है। भैंस के बार–बार फिरने के कई कारण हो सकते हैं। गाभिन न होने वाली भैंस में निम्न सुझाव काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं:

- ऐसी भैंस की एक बार पशु चिकित्सक से जांच करा लें कि कोई बीमारी या शारीरिक कमी तो नही है। खास तौर पर जननांगों की सघन जाँच अतिआवश्यक है। इसके कारण का पता चलने पर उसका समुचित निवारण किया जा सकता है।
- भैंस में गर्मी के लक्षणों को सुनिश्चित करें। कई बार भैंस किसी दूसरे कारण से बोलती या रँभाती है और किसान इसे गर्मी का लक्षण समझ कर गाभिन करा देते हैं। असमय गाभिन कराने पर भैंस गाभिन नहीं हो सकती।
- भैंस को गर्मी के लक्षणों के दौरान 12 घंटे के अंतराल पर दो बार अच्छे सांड़ से या कृत्रिम विधि से गाभिन करायें । सुबह गर्मी में आई भैंस को शाम को और अगले दिन सुबह को तथा शाम को गर्मी में आई भैंस को अगले दिन सुबह और शाम को गाभिन करायें। गर्मी (मद) में आई भैंस के योनिद्वार से निकलने वाले पतले व चमकीले तार की अच्छी तरह से जाँच पड़ताल करें। यह शीशे/पानी की तरह साफ होनी चाहिए। यदि इसमें सफेदी दिखाई देती हो तो पशु चिकित्सक से जाँच करवा कर उचित ईलाज करवाएं ।
- एक ही सांड़ से बार–बार गाभिन कराने पर भैंस गाभिन नहीं हो पा रही हो तो अगली बार किसी दूसरे सांड़ से गाभिन करायें। सांड़ के बारे में पहले से ही पड़ताल करें कि उसके द्वारा मिलाई गई भैंसों में गर्भ ठहरता है या नहीं ।
- भैंस को रोजाना 40–50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण दें ।
- शारीरिक रोग के लिए पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।
- भैंस को अधिक गर्मी के प्रभाव से बचा कर रखें।
- गर्मियों के दिनों में भैंस को छायादार पेड़ के नीचे अथवा खुले छायादार एवं हवादार बाड़े में बांधे।
- भैंस को कम से कम तीन बार ठण्डे पानी से नहलायें और ठण्डा पानी पिलायें। भैंस को नदी अथवा तालाब में छोड़ दें।
- हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित करें तथा सुबह–सबेरे तथा देर शाम को ठण्डक होने पर खिलायें।

इन उपायों को करने पर भैंस गर्मी में आ सकती है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर भैंस के जननांगों की जांच भी पशु चिकित्सक द्वारा करा कर उचित उपचार कराएं।

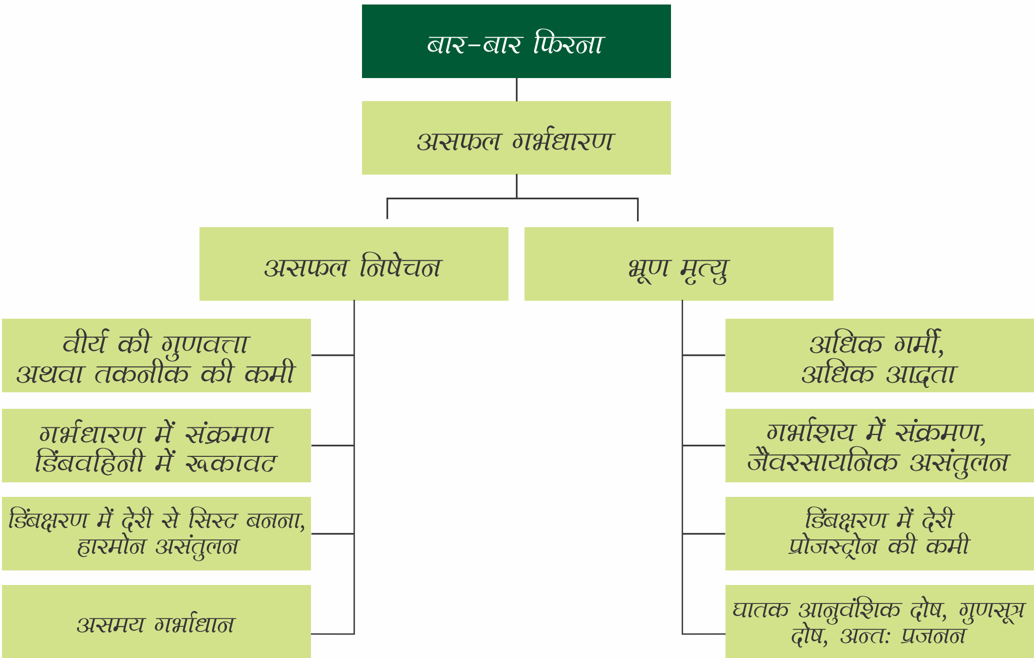

भैंस के बार-बार फिरने के कारण

शांत मदकाल

भैंसों में गर्मी के लक्षण दिखाई न देने का मुख्य कारण शांत मदकाल होना माना जाता है। इसमें भैंस तो मद में आती है परन्तु गर्मी के लक्षणों की तीव्रता कम होने के कारण किसान या तो लक्षणों को पहचान नहीं पाते या इन पर ध्यान नही देते।

भैंस में गर्मी के लक्षणों की पहचान करने के लिए किसान भाईयों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- प्रत्येक भैंस के पास जाकर अच्छी तरह से उसके व्यवहार को देखना चाहिए।
- भैंस में गर्मी के लक्षणों की तीव्रता रात में अधिक होती है। इसलिए पशु पालकों को चाहिए की रात में सोने से पहले (9-10 बजे) तथा सुबह -सबेरे (5-6 बजे) भैंस के पास एक चक्कर अवश्य लगा लें।
- भैंस का रँभाना तथा योनि मार्ग से चमकीला पारदर्शी स्राव जो एक रस्सी की तरह लटका रहता है, गर्मी का स्पष्ट लक्षण माना जाता है। यह स्राव अक्सर भैंस के बैठने के बाद योनिमार्ग से निकलता है जो पूंछ और उसके आसपास चिपक जाता है।
- गर्मी के लक्षणों का अवलोकन दिन में तीन-चार बार करना चाहिए तथा शंका होने पर पशु चिकित्सक से जांच करवानी चाहिए। पशु चिकित्सक मद की सही पहचान कर सकते हैं तथा इस बात का भी पता कर सकते हैं कि क्या इस भैंस में शांत मदकाल की कोई सम्भावना है या नहीं।
- भैंस के गर्मी में होने पर दो बार वीर्य का टीका लगवाना चाहिए। इससे भैंस के गर्भ ठहरने की सम्भावना बढ़ जाती है।
- गर्भाधान के बाद भैंस को कम से कम दो हफ्ते गर्मी से बचाकर रखें। उसे ठण्डे स्थान पर बांधें और खूब नहलाएं।
- भैंस को पर्याप्त मात्रा में हरा चारा तथा दाने में खनिज लवण मिश्रण दें। गर्भाधान के लगभग 20-22 दिन बाद भैंस में गर्मी के लक्षणों की जांच अवश्य करें, ताकि भैंस यदि ठहरी न हो तो उसे दोबारा गाभिन करवाने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जा सके।
- गर्भाधान के दो महीने बाद गर्भ जांच जरूर करवाएं। अन्यथा कई बार पशुपालक अपनी भैंस को गाभिन समझते हैं व उसकी जनन सम्बन्धी खबर नहीं रखते। महीनों इंतजार करने पर भी जब भैंस नहीं ब्याती तब जांच करवाने पर पता चलता है कि भैंस तो गाभिन ही नहीं है। इस कारण पैसा व समय दोनों की बरबादी होती है।

भैंस का गर्मी में न आना (अमदकाल)

भैंसों के गर्मी में नहीं आने के दो सम्भावित कारण हैं:
भैंस वास्तव में गर्मी में नहीं आती (वास्तविक अमद काल), दूसरा भैंस गर्मी में तो आती है, परन्तु किसान की उपेक्षा के कारण या गर्मी के लक्षणों की कम तीव्रता के कारण, गर्मी की पहचान नहीं हो पाती है (शांत अमद काल)। दोनों स्थितियों में किसान भाईयों का जागरूक होना आवश्यक है ताकि आर्थिक हानि से बचा जा सके।

वास्तविक अमदकाल

भैंस पालन एक लाभप्रद व्यवसाय तभी हो सकता है जब भैंस के दो ब्यांत के बीच का अन्तर लगभग 12-13 महीने का हो । इसके लिए जरूरी है कि भैंस ब्याने के 2-3 महीने के अन्दर मदकाल में आकर पुनः गर्भ धारण कर ले। लेकिन इस दौरान भैंस के शरीर को ऊर्जा की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि उसे अपने शरीर के रख-रखाव के अतिरिक्त दुग्ध उत्पादन पर भी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। यदि इस अवस्था में पोषण की मात्रा या गुणवत्ता में कोई कमी हो जाती है तो भैंस का ऊर्जा संतुलन बिगड़कर ऋणात्मक स्थिति में जाने लगता है जिसका सबसे अहम् असर उसके जनन पर पड़ता है । भैंस जब तक ऋणात्मक ऊर्जा संतुलन में रहती है, वह मद में नहीं आती और न ही गाभिन हो पाती है। इस प्रकार अधिक दूध उत्पादन व कम पोषक आहार, शारीरिक रोग अथवा वातावरण के अधिक तापमान के कारण भैंस में मदचक्र बंद हो जाता है तथा वह गर्मी में नहीं आती है। इस समस्या के निवारण के लिए भैंस को दाने की अधिक मात्रा वाला संतुलित आहार दें।

पड़िया का देर से तैयार होना

कुछ पड़ियां 4-5 साल की होने पर भी मद में नहीं आती और किसान बगैर लाभ के उसे पालता रहता है। इसके विपरीत इस उम्र की अच्छी नस्ल की मादा दो बार बच्चे दे चुकी होती है और साथ में दो ब्यांत का दूध भी। पड़िया के तैयार होने की उम्र मुख्य रूप से उसके खान-पान पर निर्भर करती है। याद रखना चाहिए कि आज की पड़िया कल की होने वाली भैंस है। जन्म से ही उसकी ठीक प्रकार से देख-भाल करने से भविष्य में वह एक अच्छी भैंस बन सकती है।

पड़िया सही समय पर तैयार हो उसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- पड़ियों को जन्म से ही समुचित मात्रा में संतुलित आहार और हरा दिया जाना चाहिए ताकि समय पर उनका वजन पूरा हो जाए और

वह सही उम्र में गर्मी में आ जाए ।

- पड़ियों को निश्चित उम्र की बजाय वजन के अनुसार गाभिन कराना चाहिए। प्रथम गर्भाधान के समय पड़िया का वजन लगभग 300 किग्रा होना चाहिए। अच्छी खुराक देने पर यह वजन आमतौर पर ढ़ाई साल में आ जाता है।
- पड़ियों को रोजाना 15-20 ग्राम खनिज लवण मिश्रण भी खुराक में मिलाकर देना चाहिए ।
- पड़ियों को जन्म से ही परजीवियों से बचाना चाहिए व समय पर आवश्यक बीमारी रोधक टीके भी लगवाने चाहिए । इसके अलावा उनका सर्दी व गर्मी से बचाव का पूरा प्रबन्ध रखा जाना चाहिए।
- पड़ियों को यदि संतुलित आहार, हरा चारा और खनिज लवण मिश्रण की पूरी उपलब्धता रहे तो वे निश्चित रूप से अपना वजन समय पर पूरा कर लेती हैं तथा गाभिन हो जाती हैं। यदि कुछ पड़ियां वजन पूरा हाने पर भी गर्मी में नहीं आती हैं तो उनकी जांच पशु चिकित्सक से अवश्य करवाएं और उचित इलाज करायें।

बकरी प्रजनन में नये आयाम एवं दिशाएं

साकेत भूषण

भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

भारत कृषि प्रधान देश है एवं इसमें पशुपालन का महत्वपूर्ण स्थान है। देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। पशुपालन व्यवसाय में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने की असीमित सम्भावनायें हैं। जलवायु परिवर्तन के मद्देनजर कहीं सूखा और कहीं बाढ़ का प्रकोप देश में देखने को मिल रहा है। इससे देश के विभिन्न प्रांतों में किसानों की फसल नष्ट होने व कर्ज के बोझ से दबे होने के कारण आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह पाया गया है कि जो किसान खेती के साथ -साथ पशुपालन करते थे, वे पशुपालन से खेती में हुए नुकसान को झेलने की क्षमता रखते थे। हमारे देश में कुल पशुधन लगभग 512 मिलियन है जिसमें गौ-पशु 190 मिलियन, भैंस 108 मिलियन एवं बकरियां 135 मिलियन हैं। हमारे देश में 43.8 प्रतिशत वध एवं 15 प्रतिशत मृत्युदर के बावजूद भी बकरियों की संख्या में औसतन 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से वृद्धि हो रही है। विकासशील देशों में बकरी पालन व्यवसाय का कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र में योगदान काफी महत्वपूर्ण है।

हमारे देश में बकरी को 'गरीब की गाय' के नाम से भी जाना जाता है। समाज के कुछ लोग जीविकोपार्जन के लिए बकरी पालन करते रहे हैं। लेकिन अब बकरी पालन केवल गरीब तक ही सीमित न रहकर एक उद्योग के रूप में पनप रहा है जिसमें उच्च शिक्षित एवं धनी लोग भी बकरी पालन में आगे आ रहे हैं। बकरी पालन से दूध प्राप्ति के साथ-साथ मांस, खाल, बाल एवं खाद के विक्रय से अच्छी आय भी होती है। बकरी प्रजनन नीति के क्रियान्वयन हेतु कुछ बातों का ध्यान रखने की आवश्यकता है, विशेषकर ऐसे साधन सम्पन्न क्षेत्र, जहां उन्नत नस्ल की बकरी रखी जा सकती है व उचित आधारभूत सुविधाएं हैं, की पहचान करना जिससे कि वहां कम दूध तथा मांस वाली बकरी की अपेक्षा अधिक क्षमता वाली बकरियों की संख्या में वृद्धि की जा सके।

मादा बकरी

वर्तमान बकरी प्रजनन नीति

वर्तमान बकरी प्रजनन नीति निम्न बिन्दुओं पर केन्द्रित है :

- चयनित प्रजनन द्वारा दुधारू, दुकाजी व मांस वाली नस्ल की बकरियों का उनके प्रजनन क्षेत्र में सुधार
- देशी अथवा कम दूध देने वाली बकरी की उस क्षेत्र की दुधारू व दुकाजी नस्ल के बकरों से नस्ल सुधार

वरण एवं निष्कासन

पशु वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्नता को प्रकृति का एक वरदान मान कर अच्छी आनुवंशिकी क्षमता के पशुओं का चयन करके तथा उनका आपस में समागम कराते हुए केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा में उच्च क्षमता वाली संतानों को उत्पन्न किया गया है। फलस्वरूप बकरियों की दुग्ध एवं मांस उत्पादन की क्षमता में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। बकरी रेवड़ से कम उत्पादन क्षमता वाले व अनुपयोगी बकरियों का निष्पादन करके अच्छी बकरियों को रखकर तथा उनकी संख्या बढ़ा कर उनसे अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। निम्न कोटि के पशु को पालना निरर्थक है। अच्छा यही है कि उत्तम पशुओं को चुना जाये तभी अधिक उत्पादन एवं लाभ की आशा की जा सकती है। प्रजनन और वरण को पशु प्रजनन का हथियार कहा जाता है। वरण और प्रजनन दोनों ही एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक की

अनुपस्थिति में दूसरे का कोई प्रभाव नहीं होता है। प्रजनन पद्धतियों से तात्पर्य है कि इच्छित गुणों वाले नर और मादा को छांटा जाये और प्रजनन कराकर इच्छित गुणों वाले पशु प्राप्त किये जायें। प्रजनन करने से पहले अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिए कि कौन सी प्रजनन विधि को अपनाया जाए जिससे हमें इच्छित गुण वाला पशु प्राप्त हो सके। प्रजनन पद्धति तभी सफल हो सकती है जब प्रजनन में प्रयोग किये जा रहे पशु उत्तम पैतृक गुण वाले हों और बच्चों के अन्दर अच्छे पैतृक गुण जायें। प्रत्येक प्रजनन पद्धति किसी न किसी रूप मे अच्छी होती है, किसी एक विधि को चुनना प्रजननकर्ता के ऊपर होता है कि कौन सी विधि प्रजनक को उसके लक्ष्य तक पहुंचाती है। पशुओं का प्रजनन करने से पहले प्रजनक को उद्देश्यों का पूर्णरूप से अध्ययन कर लेना चाहिए। उसे यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि किस प्रयोजन के लिए वह पशुओं की उन्नति चाहता है।

प्रजनन के उद्देश्य

निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बकरियों का प्रजनन कराया जाता है:

- संतान जल्दी युवा हों
- संतान अधिक समय तक जीवित एवं उत्पत्ति योग्य रहें
- संतान नियमित रूप से बच्चे देने वाली हो
- उनमें रोग से बचने की शक्ति हो
- वे अधिक उत्पादक हों
- वे सभी प्रकार के वातावरण में रह सकें अर्थात उनकी सहनशीलता अच्छी हो

बकरी प्रजनन के तरीके कुछ भी हों परन्तु प्रजनन बकरियों को किसी न किसी रूप में उन्नतिशील बनाने के लिए ही किया जाता है। किसान उत्तम नस्ल वाले बकरों के अभाव में अशुद्ध नस्ल के बकरे से ही बकरी को मिला देते हैं । इससे निम्न कोटि के अनुत्पादक पशु मिलते हैं जो कि बाद में पशुपालकों के लिए समस्या ही नहीं अपितु भूमि पर भी भार रूप होते हैं। इस प्रकार का प्रजनन देश के लिए घातक सिद्ध होता है। प्रजनन की समस्या को हल करने के लिए यह आवश्यक है कि बकरी पालकों को प्रजनन की सभी पद्धतियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए । उन्हें अपने कार्य में पूर्ण रूचि एवं लगन भी होनी चाहिए । इस प्रकार एक बकरी पालक अपने रेवड़ में उत्तम गुणों के बकरों का प्रयोग करके एवं आधुनिक प्रजनन विधियों द्वारा अपने रेवड़ का उन्नयन कर सकता है।

भारत में बकरी प्रजनन की समस्याएं:

हमारे देश में बकरी प्रजनन से सम्बन्धित निम्न समस्याएं हैं :

कृत्रिम गर्भाधान का अभाव: कृत्रिम गर्भाधान पशुओं को सुधारने तथा प्रजनन की सर्वोत्तम विधि है। अच्छी नस्ल के बकरों की अधिक कमी है। अत: अच्छे बकरों का वीर्य संचयन करके कृत्रिम गर्भाधान से अधिक से अधिक बकरियों का गर्भाधान कराना कम खर्चीला होगा। सरकार द्वारा खोले गये कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों को बकरी के लिए उपयोग में कम लाया जाता है जिसको बढ़ाना आवश्यक है।

बकरियों के रोग: बकरियों में अनेक प्रकार के जननेन्द्रिय रोग पाये जाते हैं जैसे संक्रामक गर्भपात, बाँझपन आदि जो कि प्रजनन कार्यक्रम को भली-भांति चलाने में बाधक होते हैं। अत: उपचार के लिए पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए ।

उत्तम बकरों की कमी: देश में उत्तम एवं सिद्ध बकरों की कमी के कारण शुद्ध नस्ल के पशु कम तैयार होते हैं। अत: उत्तम बकरों का उत्पादन अति आवश्यक है।

मेमनों की मृत्युदर : बकरी पालन के उचित प्रबन्धन न अपनाये जाने के कारण छोटे मेमनों की मृत्यु जीवन के आरम्भ काल में ही हो जाती है। भारत में नवजात मेमनों की मृत्युदर की प्रतिशत अधिक है जिसको कम करना आवश्यक है।

अनियमित जनन: प्राय: ऐसा देखा गया है कि प्रथम बार गर्भित होने के बाद बकरियां दूसरी बार देर से गर्भित होती है, जिनको जनन की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग करके शीघ्र ही गर्भित कराना चाहिए ।

ब्यांत अन्तराल का अधिक होना: बकरियों को डेढ़ वर्ष में दो बार अन्यथा कम से कम प्रत्येक वर्ष ब्याना (प्रसव करना) चाहिए । यदि यह समय बढ़ता है तो आर्थिक हानि होती है। इसके सुधार के लिए पशु के खान-पान पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

चारे दाने की कमी: देश में चारे दाने की अत्यधिक कमी है। चारे दाने की कमी से बकरियों की बढ़वार तथा प्रजनन में समस्या उत्पन्न होती है।

उच्च प्रजनन के लिए अत्याधुनिक तकनीकें

परम्परागत प्रजनन एवं चयन क्रिया द्वारा केवल सीमित एवं धीमा विकास ही सम्भव है। इन परिस्थितियों में अग्रलिखित अत्याधुनिक आनुवंशिकी एवं जैव तकनीकियाँ महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं :

गुण सुत्रों द्वारा मूल्यांकन: बकरियों के जन्म के तुरंत बाद ही उनके गुणसूत्रों और अन्य जीव रसायन क्रियाओं में आनुवंशिक त्रुटियों का मूल्यांकन करने से भविष्य में होने वाली कई आनुवंशिकी समस्याओं और दोषों से बचा जा सकता है।

जीन्स सूचकों की पहचान: बकरियों में अधिक दूध उत्पादन एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता वाले जीन की पहचान और पृथक्कीकरण करने पर शोध होना चाहिए ताकि वंछित जीन्स को अन्य सुधार क्रियाओं द्वारा विकास में प्रयोग किया जा सके ।

सूचक सहायतित चयन: लाभकारी जीन्स की संख्या पशुओं में बढ़ाने के लिए उन पशुओं का निर्धारित प्रजनन करना चाहिए जिसमें जीन्स सूचक पाये गये हैं।

डीएनए फिंगरप्रिंटिंग: नस्ल विशेष पहचान के लिए डीएनए फिंगरप्रिंटिग एक विश्वसनीय विधि है जो विवादास्पद वंश का भी समाधन करती है।

जीन स्थानांतरण एवं परजीनी पशु उत्पादन: लाभकारी एवं उपयोगी जींस को एक पशु से निकाल कर जैव तकनीकों द्वारा दूसरे पशु के भ्रूण में स्थानान्तरण करके परजीनी पशुओं का उत्पादन किया जाता है जिससे एक सर्वगुण संपन्न आदर्श पशु प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह के शोधों पर कार्य करना आवश्यक है।

जीन उपचार: वर्तमान में आनुवंशिक रोंगों का उपचार सम्भव नहीं है परन्तु भविष्य में जीन के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का ज्ञान प्राप्त कर, आनुवंशिक जैव तकनीकों द्वारा निरोगी पशु का उत्पादन सम्भव है।

वीर्य तथा भ्रूण हिमीकरण: आनुवंशिक रूप से उत्तम बकरों के वीर्य तथा भ्रूण का हिमीकरण करके उन्हें लम्बे समय तक प्रभावशाली एवं क्रियाशील बनाया जा सकता है। इस प्रक्रिया से उत्तम गुणों वाले जननद्रव्य को एक साथ कई स्थानों पर स्थानान्तरित भी किया जा सकता है।

शुक्राणु लिंगीकरण: आधुनिक विधियों द्वारा शुक्राणुओं को भैतिक एवं रसायनिक गुणों के आधार पर नर विशेष और मादा विशेष शुक्राणु में अलग किया जा सकता है जिनसे मनचाहे नर या मादा मेमनें पैदा किये जा सकते हैं।

बहुडिम्बीकरण तथा भ्रूण प्रत्यारोपण: विभिन्न हारमोन्स की सहायता से बकरी की डिम्बीकरण अर्थात् अण्डे देने की क्षमता कई गुना बढ़ाकर शुक्राणुओं द्वारा निषेचन करके भ्रूणों को अलग–अलग ऐसी बकरियों में प्रतिरोपित कर दिया जाता है जो प्रजनन के लिए अक्षम होती हैं। इस तकनीक से कम समय में आनुवंशिक दृष्टि से उत्तम बकरियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

भ्रूण विभाजन: उत्तम बकरियों के भ्रूण को गर्भ की आरम्भिक अवस्था में दो या अधिक भागों में विभाजित करके अलग–अलग बकरियों में प्रत्यारोपण कर सकते हैं। इस तकनीक से कई पशु कम समय में प्राप्त किये जा सकते हैं। ऐसे समजीनी पशु विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों में इस्तेमाल किये जाते हैं।

भ्रूण लिंगीकरण: दुग्ध उत्पादन का सम्बन्ध भ्रूण के लिंग पर निर्भर करता है। अत: प्रत्यारोपण से पहले भ्रूण का विभिन्न विधियों जैसे गुणसूत्रों की पहचान अथवा विशेष डीएनए प्रोब्स द्वारा लिंगीकरण केवल मादा भ्रूण को प्रतिरोपण के लिए चुना जा सकता है।

परखनली मेमना: बकरियों के डिम्बग्रंथियों में से डिम्ब निकालकर और परखनली में परिपक्व करके शुक्राणुओं से निषेचन किया सकता है। तत्पश्चात् कुछ समय तक विशेष वातावरण में विकास के बाद भ्रूण को प्रत्यारोपित कर दिया जाता है।

केन्द्रीय अन्तरण: आनुवंशिक दृष्टि से उपयोगी बकरियों से प्राप्त भ्रूण का पुन्जीय प्रसार करने के लिये विशेष विधि द्वारा भ्रूण की प्रत्येक कोशिका से केन्द्र को निकाल कर दूसरे केन्द्र रहित कोशिका में स्थानान्तरण करके उनकी क्लोनिंग की जा सकती है।

चम्बल में बकरी पालनः रोजगार का बेहतर विकल्प

सत्येन्द्र पाल सिंह

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय-कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना-476001

चम्बल का बीहड़ क्षेत्र बकरी पालन की दृष्टि से असीम संभावना वाला क्षेत्र है। यहां की भौगोलिक स्थिति को देखते हुये कहा जा सकता है कि यदि इस क्षेत्र पर ध्यान दिया जाये तो चम्बल का यह क्षेत्र बकरी पालन में अग्रणी भूमिका अदा कर सकता है। आंकड़ों पर नजर डालें तो चम्बल का यह बीहड़ क्षेत्र मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कई जिलों के बीच फैला है। यहां पर 70 प्रतिशत से ज्यादा किसान सीमांत और लघु किसान की श्रेणी में आते हैं। इन जिलों में ही विश्व का सबसे बड़ा बीहण क्षेत्र है, जोकि चम्बल नदी के किनारे-किनारे फैला हुआ है। इस क्षेत्र में बकरी पालन की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। क्योंकि यह भूमि खेती के अनुकूल नहीं हैं, इस कारण यहाँ ग्रामीण किसानों की आजीविका के लिये बकरी पालन रोजगार का बेहतर विकल्प भी बन सकता है। हालांकि चम्बल संभाग में कुछ छोटे मझोले किसानों एवं भूमिहीन गरीब ग्रामीणों द्वारा बकरी पालन का कार्य किया जा रहा है, परन्तु समुचित तकनीकी के अभाव में बकरी पालन से अच्छा मुनाफा नहीं हो पा रहा है। यदि बकरी की उन्नत नस्ल के साथ किसानों को वैज्ञानिक ढ़ंग से बकरी पालन का तकनीकी ज्ञान प्रदान किया जाए तो इस क्षेत्र में बकरी पालन लाभ का व्यवसाय बनकर उभर सकता है।

चम्बल क्षेत्र का दायरा

- मध्य प्रदेश के मुरैना, भिण्ड एवं श्योपुर जिले
- उत्तर प्रदेश के आगरा एवं इटावा जिले
- राजस्थान के धौलपुर, सवाई माधोपुर एवं करौली जिले।

चम्बल क्षेत्र में बकरी पालन की आवश्यकता क्यों?

यूं तो भारत वर्ष के सभी राज्यों के लिए बकरी पालन उपयुक्त है, लेकिन चम्बल क्षेत्र के लिए बकरी पालन निम्न विशेषताओं को देखते हुये काफी महत्वपूर्ण हैः

- छोटा आकार और सीधा स्वभाव
- रखने के लिये कम जगह की आवश्यकता
- कम पूंजी की जरूरत
- बच्चा पैदा करने के लिये जल्दी तैयार होना
- एक से अधिक बच्चा देने की क्षमता का होना
- कम मात्रा में चारे, दाने की आवश्यकता
- हर प्रकार के पेड़, पौधे एवं झाड़ियों को खाने की आदत
- कम गुणवत्ता वाले चारों को पचाने की अनोखी क्षमता
- हर प्रकार की जलवायु के अनुकूल अपने आपको ढ़ालने की क्षमता
- आवास हेतु विशेष सुविधा की आवश्यकता का न होना
- रख-रखाव का सस्ता और आसान होना

जखराना बकरी

सिरोही बकरी

जमुनापारी बकरी

बरबरी बकरी

- दूध और मांस की मांग का तेजी से बढ़ना
- कम जोखिम एवं अधिक लाभ का होना
- कम कीमत के कारण कभी भी कहीं भी खरीदा एवं बेचा जा सकना।

चम्बल क्षेत्र हेतु बकरी की उपयुक्त नस्लें

मध्य प्रदेश के चम्बल संभाग का यह क्षेत्र राज्य के गिर्द जोन के अंतर्गत आता है। मध्य प्रदेश राज्य की अपनी कोई भी बकरी की नस्ल नहीं है, यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश और राजस्थान की सीमाओं से लगा है। इस कारण इन जिलों में उत्तर प्रदेश की बकरी की प्रमुख नस्लें जैसे कि बरबरी एवं जमुनापारी तथा राजस्थान की सिरोही नस्ल का समावेश यहां पाली जा रही द्विनस्ली/दोगली/देशी किस्म की बकरियों में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। इस क्षेत्र में किसी भी नस्ल की बकरी की शुद्ध प्रजाति देखने को कम ही मिलेगी, जिसका प्रमुख कारण बिना सोचे-समझे प्रजनन कराना और नस्लों का अन्त: मिश्रण होना है। यहां की जलवायु और भौगोलिक क्षेत्रफल को देखते हुये बरबरी, जमुनापारी, सिरोही एवं जखराना जैसी बकरियों की नस्लों का पालन बखूबी किया जा सकता है।

जमुनापारी: उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली जमुनापारी बकरी दुग्ध उत्पादन में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इस नस्ल का उद्गम स्थल इटावा जिले का चकरनगर क्षेत्र है। इस नस्ल की बकरियां मुख्यत: सफेद रंग की होती हैं, जिसके सिर, कान एवं गले पर हल्का बादामी रंग का धब्बा होता है। किसी-किसी में बादामी धब्बा गाढ़ा भी होता है। कुछ बकरियों के सिर एवं कान पर काले धब्बे भी पाये जाते हैं जोकि संख्या में बहुत कम होते हैं । इस नस्ल की मुख्य पहचान तोते जैसी उभरी नाक, लम्बे लटके कान तथा जांघों में बालों के गुच्छे का होना है। ऊपर का जबड़ा नीचे के जबड़े से छोटा होने के कारण तोते सी आकृति बनती है। इस नस्ल की बकरी दूध देने में काफी अच्छी होती हैं। यह एक दिन में 2 से 3 लीटर तक दूध दे देती है और एक दुग्धकाल में 325 लीटर तक दूध दे सकती है। बेहतर प्रबंधन और आहार व्यवस्था होने पर 12 महीने में नर का शारीरिक वजन 45 से 48 किग्रा तथा इसी उम्र की मादा का वजन 30 से 35 किग्रा तक हो जाता है। कई बार इस नस्ल की बकरियां दो बच्चे भी पैदा करती हैं।

बरबरी: यह नस्ल भी उत्तर प्रदेश की प्रमुख नस्ल है जो मथुरा, आगरा, अलीगढ़, हाथरस, एटा, मैनपुरी, इटावा, फिरोजाबाद एवं राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर आदि जनपदों में पाई जाती है। यह दुकाजी नस्ल है जो कि मांस और दूध उत्पादन के लिए अच्छी मानी जाती है। इस नस्ल की बकरी को बांधकर भी सफलतापूर्वक पाला जा सकता है। इस नस्ल की बकरियों के शरीर पर बादामी व चॉकलेटी रंग के छोटे-छोटे या बड़े धब्बे होते हैं। कुछ बकरियों पर काले एवं भूरे रंग के धब्बे भी पाये जाते हैं। बरबरी प्रतिदिन औसतन 800 ग्राम से लेकर एक किग्रा तक दूध देती है अर्थात 150 दिन के दुग्ध काल में औसतन 100 किग्रा तक दूध दे देती है। अधिकांश बकरियां एक बार में दो बच्चो को जन्म देती हैं। यह बकरी 14 माह की अवधि में दो बार बच्चो को जन्म देती है। बरबरी प्रजनन हेतु 10 से 12 माह में तैयार हो जाती है।

सिरोही: इस नस्ल की बकरियां राजस्थान में मुख्यत: सिरोही जिले में शुद्ध नस्ल के रूप में पाई जाती है। शुष्क जलवायु में ये बकरियां अच्छा उत्पादन करती हैं। यह गठे आकार की मध्यम ऊंचाई की बकरी है। इनका रंग कत्थई होता है । कुछ बकरियों के शरीर पर हल्के व गहरे रंग के भूरे एवं सफेद धब्बे पाये जाते हैं । इस नस्ल की एक विशेष पहचान यह भी है कि कुछ बकरियों में गले के नीचे कलगी (मांसल भाग बैटल) पायी जाती है। इस नस्ल का पालन मांस और दूध दोनों के लिये किया जाता है। 190 दिन के दुग्धकाल में ये 114 किग्रा तक दूध दे देती हैं। सिरोही बकरी का 12 महीने की उम्र में औसत वजन 28 से 30 किग्रा होता है।

जखराना: यह मध्यम आकार की काले रंग की बकरी है। इसके मुंह एवं कान पर सफेद रंग के छोटे-छोटे धब्बे पाये जाते हैं। इसके कान मध्यम आकार के एवं चपटे होते हैं। यह एक दुकाजी नस्ल है। एक बकरी एक दिन में 1 से 1.5 लीटर तक दूध देती है अर्थात् 115 दिनों के दुग्धकाल में 125 किग्रा तक दूध देती है। नर का 12 माह पर शारीरिक भार 22 से 24

चम्बल क्षेत्र में पाई जाने वाली स्थानीय बकरी

किग्रा तक तथा मादा का 20 से 22 किग्रा तक होता है। इस नस्ल की बकरियां राजस्थान के अलवर जिले के जखराना गांव में पाई जाती हैं इसीलिये इसका नाम जखराना पड़ा । इस नस्ल की बकरियां देश के अन्य भागों में भी पाली जाती हैं।

चम्बल क्षेत्र हेतु बकरी पालन की उपयुक्त पद्धतियां

चम्बल क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए यहां पर बकरी को किसी भी पद्धति में रखकर पाला जा सकता है। बकरी पालक अपनी परिस्थितियों के अनुरूप बकरी पालन की निम्न उपयुक्त पद्धतियों में से किसी का भी चयन कर सकते हैं:

1. सघन पद्धति: बकरी पालन की इस पद्धति को ऐसे क्षेत्रों के लिये उपयुक्त माना जाता है जिन क्षेत्रों में बकरियों को चराने के लिये पर्याप्त मात्रा में चरागाह उपलब्ध नहीं है। इसे शून्य चराई ग्रेजिंग विधि भी कहते हैं। इस पद्धति में बकरियों को फार्म अथवा घर पर ही रखकर उनकी चारे-दाने की सभी आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इस पद्धति से बकरी पालन करने पर बकरियों से उनकी आनुवंशिक क्षमता के अनुसार उत्पादन लिया जा सकता है।

2. अर्ध-सघन पद्धति: यह पद्धति कम चारागाह की उपलब्धता वाले क्षेत्रों लिये उपयुक्त है। इसमें बकरियों को सीमित समय के लिये चराकर तथा बाकी आहार की पूर्ति घर अथवा फार्म पर पूरक आहार के रूप में चारा-दाना खिलाकर पूरी की जाती है। इसमें बकरियों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप बेहतर पूरक आहार की मात्रा खिलाकर उनसे बेहतर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

3. विस्तीर्ण चारण पद्धति: इस पद्धति में बकरियों को पूरी तरह से केवल चराकर ही पालन किया जाता है। यदि चरागाह अच्छी गुणवत्ता वाला है तो बकरियों को घर पर अलग से चारे-दाने की जरूरत नहीं पड़ती है। उनकी आवश्यकताएं चरागाहों से ही पूरी हो जाती हैं। इस पद्धति में बकरियों का प्रबंधन करना तो आसान रहता है लेकिन उनसे क्षमता के अनुरूप उत्पादन नहीं मिल पाता है।

स्थानीय बकरियों का नस्ल सुधार

चम्बल क्षेत्र में पाली जा रही अधिकांश बकरियों की नस्ल मिश्रित किस्म की है, जिनसे बकरी पालकों को क्षमता के अनुरूप बेहतर उत्पादन नहीं मिल पा रहा है। यदि कोई किसान उन्नत बकरी पालन की शुरूआत करना भी चाहता है तो उसके सामने शुद्ध नस्ल के पशु प्राप्त होने की समस्या आती है। ऐसे में इस क्षेत्र के लिये बकरियों की नस्ल को उन्नत नस्ल में तब्दील करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं हैं। इस हेतु कृत्रिम गर्भाधान बेहतर विकल्प हो सकता है। लेकिन बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा स्थानीय पशु चिकित्सा केन्द्रों पर उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे में चम्बल क्षेत्र में बकरी नस्ल सुधार हेतु एकमात्र विकल्प, उन्नत किस्म के शुद्ध नस्ल के प्रजनक बकरों की उपलब्धता, बकरी पालकों को कराकर प्राकृतिक तरीके से नस्ल सुधार है। चम्बल संभाग के किसान बरबरी, जमुनापारी, सिरोही आदि नस्ल के प्रजनक बकरे भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसंधान केन्द्र, मखदूम, मथुरा से भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रजनन बकरा अनुपात: 10 से 20 मादा बकरियों के झुण्ड पर एक प्रजनक बकरा पर्याप्त रहता है। प्रजनक बकरे का चयन ठीक से करना चाहिए। उसका स्वास्थ्य बेहतर हो। इस हेतु 1.5 से 2 साल का प्रजनक बकरा ठीक रहता है जिसे प्रत्येक 2.5 से 3 साल बाद बदलते रहना चाहिये।

बकरियों का मदकाल: सामान्यत: बकरियों का मदकाल (गर्मी) 24 से 36 घण्टे तक रहता है। अत: मदकाल में आई बकरियों को मदकाल में

आने के 10 से 12 घण्टे बाद ही गाभिन कराना चाहिए। इस दौरान गर्भाधान कराने से गर्भ ठहरने की संभावना सर्वाधिक रहती है। अगर बकरी 24 घण्टे बाद भी गर्मी के लक्षण प्रकट करती है तो दोबारा गाभिन कराना चाहिये। बकरियाँ गर्भ नहीं ठहरने की दशा में 19 से 21 दिन के अंतराल पर बार–बार गर्मी में आती रहती हैं।

बकरियों में गर्मी (मद) के लक्षण

- बार–बार पेशाब करना
- पूंछ को बार–बार हिलाना
- बेचैन होना तथा चारा–दाना कम खाना
- साथ की अन्य बकरियों पर चढ़ना
- बकरी योनि का लाल होकर चिकनी व लसीली होना
- योनि मार्ग से पारदर्शी योनिद्रव्य का निकलना
- बार–बार मिमयाना व चौकन्ना होकर देखना
- प्रजनक बकरे को प्रजनन हेतु स्वीकृति देना।

बकरियों के लिये आवास प्रबंधन

बकरियों के लिये खुली तथा ढ़की दोनों जगहों की आवश्यकता होती है। ढ़की जगह में जानवर का धूप, वर्षा, सर्दी आदि से बचाव होता है तो खुली जगह में वह व्यायाम, सर्दियों में धूप सेकना एवं आराम करती है। सम्पूर्ण आवास का एक तिहाई हिस्सा खुले बाड़े के रूप में रखा जाता है। बकरे और बकरियों को उनकी उम्र एवं कार्य के अनुसार जगह की आवश्यकता घटती–बढ़ती रहती है। बकरियों को उनकी आवश्यकता अनुसार जगह नहीं देने पर उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है, उनकी वृद्धि और उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। इसके साथ ही बकरी बाड़ा बनाते समय हवा के उचित आवागमन, बाड़े की छत, दीवालों, फर्श आदि का ध्यान रखा जाना चाहिए।

बकरियों का पोषण प्रबंधन

बकरियों को दुग्ध उत्पादन, मांस उत्पादन, गर्भावस्था, शारीरिक विकास आदि के लिये पोषण की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में चारे –दाने का अनुपात (शुष्क पदार्थ के अनुसार) 60:40 प्रतिशत होना चाहिए जिससे उनसे अधिकतम उत्पादन, वृद्धि आदि प्राप्त हो सके। हरी घास, बरसीम, मक्का, जौ, जई, लोबिया, ज्वार, पेड़–पौधों की पत्तियां आदि को हरे चारे के रूप में तथा अरहर, चना, जई, जौ, गेहूं आदि के भूसे को शुष्क पदार्थ के रूप में खिलाना चाहिए। बच्चों की उचित वृद्धि के लिये उन्हें दो माह की उम्र के उपरांत शुष्क व हरे चारे का अनुपात 2:1 रखना चाहिए।

बकरियों में कुल शुष्क पदार्थ की आवश्यकता उनके शरीर भार के 3 से 4 प्रतिशत के बराबर होती है। दूध देने वाली बकरियां एवं छोटे बच्चे अपने शारीरिक भार के लगभग 5 प्रतिशत के बराबर शुष्क पदार्थ खा लेते हैं। इस प्रकार से बकरी पालक शुष्क पदार्थ की आवश्यकता को आधार मानकर बकरियों के लिये जरूरी चारे–दाने की मात्रा की गणना कर सकते हैं। बकरियों की विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं पर उनकी पोषण संबन्धी आवश्यकताएं अलग–अलग होती हैं।

सूखी बकरियां : सूखी बकरियों को प्रतिदिन लगभग 500 ग्राम दलहनी अथवा एक किग्रा गैर दलहनी हरा चारा, 500 से 600 ग्राम दलहनी भूसा तथा लगभग 100 ग्राम दाना मिश्रण की आवश्यकता होती है।

दूध देनेवाली बकरियां: दूध देने वाली बकरियों हेतु एक किग्रा दलहनी हरा चारा प्रति बकरी प्रति दिन के हिसाब से अवश्य देना चाहिए। यदि हरा दलहनी चारा उपल्ब्ध नहीं है तो उस स्थिति में बकरियों को दलहनी चारे से बनी हुई 'हे' (हरी अवस्था में सुखाया गया चारा) खिलाकर उनकी पोषण की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। इसके अलावा प्रति किग्रा दुग्ध उत्पादन पर 200 से 250 ग्राम दाना मिश्रण प्रति बकरी प्रति दिन खिलाना चाहिए।

तालिका 1. उम्र के अनुसार बकरियों के लिए निर्धारित जगह की आवश्यकता

बकरियों की उम्र	ढ़के बाड़े हेतु (वर्ग मीटर)	खुले बाड़े हेतु (वर्ग मीटर)
3 माह	0.2 से 0.3	0.4 से 0.6
3 से 9 माह	0.6 से 0.75	1.2 से 1.5
9 से 12 माह	0.75 से 1.0	1.5 से 2.0
वयस्क बकरे	1.5 से 2.0	3.0 से 4.0
गाभिन एवं दूध देने वाली बकरियां	1.5	3.0

तालिका 2. बकरी स्वास्थ्य कैलेण्डर

		टीकाकरण कार्यक्रम	
बीमारी	**प्रथम टीकाकरण**	**बूस्टर टीका**	**पुन: टीकाकरण**
पी.पी.आर.	3 माह की उम्र	आवश्यकता नहीं	3 वर्ष बाद
आंत्र विषाक्तता (इंटेरोटॉक्सीमिया)	3 माह की उम्र	प्रथम टीकाकरण के 3 सप्ताह बाद दूसरा टीका	प्रतिवर्ष 2 टीके 3 सप्ताह के अंतराल पर
बकरी चेचक	3-5 माह की उम्र	प्रथम टीकाकरण के 3 सप्ताह के बाद	12 माह पर
खुरपका-मुहंपका रोग	2-3 माह की उम्र	प्रथम टीकाकरण के 4 माह बाद	प्रत्येक 6 माह उपरांत
गलघोटूं	3-6 माह की उम्र	प्रथम टीकाकरण के 6 माह बाद	प्रतिवर्ष एक टीका
		कृमिनाशक कार्यक्रम	
कृमि रोग	**उम्र**	**दवा देने का समय**	**विशेष**
कॉक्सीडियोसिस	2-3 माह पर 3-5 दिन तक काक्सीमारक दवा देते हैं	6 माह की उम्र तक	काक्सीमारक दवा 5 दिन तक निर्धारित मात्रा में देनी चाहिए ।
अंत: परजीवी	तीन माह की उम्र	बरसात के प्रारम्भ तथा अंत में	सभी पशुओं को एक साथ दवा देनी चाहिए
वाह्वय परजीवी	सभी उम्र में	वर्ष में कम से कम तीन बार या संक्रमण बढ़ने पर	सभी पशुओं को एक साथ नहलाना चाहिए।

गर्भवती बकरियां: गर्भित बकरियों को ब्याने के 45 दिन पूर्व से ही प्रतिदिन 300 से 400 ग्राम अतिरिक्त दाना देना शुरू कर देना चाहिए। इससे जन्म के समय पैदा होने वाला बच्चा औसत वजन का प्राप्त होगा । बच्चा पैदा करने के बाद बकरी से उपयुक्त मात्रा में दुग्ध उत्पादन प्राप्त हो सकेगा। साथ ही दुग्धकाल के दौरान बकरी का स्वास्थ्य एवं वजन ठीक बना रहता है। गर्भावस्था के दौरान बकरियों को सुपाच्य एवं उच्च गुणवत्ता का चारा-दाना पोषण हेतु देना चाहिये जिससे सामान्य से कम आहार ग्रहण करने पर भी बकरी एवं उसके गर्भ में पल रहे बच्चे की सभी पोषण संबन्धी आवश्यकताएं पूर्ण हो सकें।

प्रजनन बकरों का पोषण: प्रजनक बकरों की पोषण व्यवस्था पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। प्रजनन हेतु बकरों को प्रयोग में लाते समय उन्हें शरीर रक्षा के अतिरिक्त आवश्यक मात्रा में उत्पादन आहार भी देने की जरूरत होती है। अत: प्रजनन के लिये प्रयोग लाये जाने के समय सामान्य पोषण के रूप में- हरा चारा एवं दलहनी भूसे के अलावा 400 से 500 ग्राम दाना मिश्रण प्रति बकरा प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाना चाहिए। प्रजनन काल के अलावा शेष समय में सामान्य पोषण ही पर्याप्त रहता है।

बकरियों के लिये दाना मिश्रण: बकरियों के लिये न केवल दाने की मात्रा बल्कि इसकी गुणवत्ता इनके उत्पादन को प्रभावित करती है। यदि बकरियों को अच्छी गुणवत्ता वाला दलहनी हरा चारा अथवा दलहनी हरे चारे से बनी 'हे' उचित मात्रा में उपलब्ध है तो इस दशा में दाना मिश्रण में केवल अनाज जैसे- जई, जौ, गेहूं, बाजरा, मक्का, ज्वार आदि ही पर्याप्त रहता है। परन्तु जिस समय अच्छी गुणवत्ता वाला दलहनी हरा चारा या उससे बनी हुई 'हे' उपलब्ध नहीं है तब बकरी के दाने के मिश्रण में उचित मात्रा में खल का मिलाना आवश्यक हो जाता है जिससे कि पोषण में प्रोटीन और ऊर्जा का उचित सन्तुलन बना रहे। इसके अलावा बकरियों को उनके दाना मिश्रण में 1.5 प्रतिशत नमक एवं 1.5 प्रतिशत खनिज लवण मिलाकर खिलाना जरूरी होता है।

ठंड से बचाव हेतु विशेष आहार: सर्दियों के दिनों में दूध देने वाली बकरियों को 100 ग्राम गुड़ एवं 100 ग्राम मेथी दाना अलग से खिलाना काफी लाभदायक रहता है। इससे अतिरिक्त ऊर्जा की पूर्ति के साथ सर्दी से बचाव एवं दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी प्राप्त होती है। अत्यधिक सर्दियों के दिनों में रात के समय बकरियों को ठण्ड से बचाने के लिये 2 से 3 लहसुन की कलियों को रात के समय खिलाया जाना काफी लाभदायक होता है। इससे शीतजनित समस्याओं से बचाव होता है।

चम्बल की स्थानीय बकरी

मुरैना जिले में बकरी पालन

बकरियों की स्वास्थ्य सुरक्षा: बकरियों को भी अन्य पशुओं की तरह रोग और बीमारियां प्रभावित करती हैं। बकरी पालन से अच्छा लाभ लेने के लिये बकरियों का रोग और बीमारियों से बचाव जरूरी हो जाता है। बकरियों को कई संक्रामक रोगों के साथ अंत: और वाह्य परजीवी काफी हानि पहुंचाते हैं। अत: इनसे बचने के लिये रोग और बीमारी लगने से पूर्व इनका बचाव एक बेहतर विकल्प है जिसे अपनाकर बकरी पालक अपना समय और पैसा दोनों ही बचा सकते हैं। केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा द्वारा जारी बकरी स्वास्थ्य कैलेण्डर अपनाकर इन रोगों पर काबू पाया जा सकता है।

चम्बल क्षेत्र में बकरी पालन को बढ़ावा देने हेतु कुछ सुझाव

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2022 तक किसानों की आय दुगना करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ऐसे में इस क्षेत्र में ग्रामीणों की अजीविका में वृद्धि करने के लिये बकरी पालन बेहतर विकल्प है। इसके लिये इस क्षेत्र में ग्रामीणों को ज्ञान के साथ ही आर्थिक सहयोग की आवश्यकता होगी।

- बकरी पालन व्यवसाय शुरू करने के लिये क्षेत्र में गरीब ग्रामीण किसानों को लम्बी अवधि के लिये सस्ते और सुलभ ऋण की सुविधा राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराई जाएं
- गांव-गांव बकरी पालकों हेतु कृत्रिम गर्भाधान अथवा उन्नत नस्ल के प्रजनक बकरों की सुविधा प्रदान की जाएं
- बकरी पालकों को बकरी पालन का तकनीकी ज्ञान देने के लिये लगातार प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाएं
- बकरी पालन में जातिगत विषमता समाप्त करने हेतु जागरूकता पैदा की जाएं
- बकरी पालकों को गांव स्तर पर ही टीकाकरण एवं रोगों से बचाव की सुविधायें प्रदान की जाएँ।

गर्भाशय में ऐंठन लगना: कारण एवं निवारण

संजय कुमार[1] एवं अतुल सक्सेना[2]

[1] पशु चिकित्सा अधिकारी, चौमुहाँ, मथुरा-281001
[2] उ.प्र. पंडित दीन दयाल उपाध्याय, पशुचिकित्सा विज्ञान वि.वि. एवं गौ अनुसंधान संस्थान, मथुरा-281001

इस घटना में गर्भाशय का अपने अक्ष पर घुमाव या ऐंठन हो जाता है। यह परेशानी गाय व भैंस में सबसे अधिक तथा भेड़ व बकरियों में कम तथा घोड़ियों में बहुत ही कम होती है। अधिकांशत: गर्भाशय में ऐंठन की जानकारी ब्याने के समय ही हो पाती है।

प्राथमिक कारण

दीर्घ स्नायु की संरचना एवं जुड़ाव: गाय एवं भैंस में गर्भाशय का पृष्ठ भाग उदरगुहा में स्वतन्त्र रहता है और रूमेन व अन्य अंगों से सटा रहता है। गर्भाशय के प्रतिपृष्ठ भाग पर दीर्घ स्नायु जुड़े रहते हैं जिसके कारण गर्भाशय हल्के तरीके से उदरगुहा में तैरता रहता है। गर्भाशय में बच्चे के सींग का आकार बढ़ने से भी गर्भाशय में घुमाव या ऐंठन या अण्टा लगने की सम्भावना बढ़ जाती है । स्नायु का आकार तो वही रहता है परन्तु गर्भाशय का आकार बच्चे के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता जाता है।

पशु के उठने-बैठने का तरीका: ब्याने के समय मादा पशु बार-बार बैठती व लेटती है और उठते-बैठते समय घुटनों को पहले मोड़ती है जबकि खड़े होते समय पिछले पैरों को पहले खड़ा करती है। ऐसा बार-बार करने से उदरगुहा में स्वतन्त्र तैर रहे गर्भाशय में ऐंठन लगने की सम्भावना हो सकती है।

अंतिम त्रैमास : गर्भकाल के अन्तिम त्रै-मास में गर्भ की स्वतन्त्र गति अधिक बढ़ जाती है और ऐंठन होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

प्रजाति: अधिक दूध देने वाली दुधारू नस्लों की तुलना में कम दुग्ध उत्पादन वाली नस्लों में अण्टा लगने की सम्भावना कम रहती है।

खुरपका-मुँहपका: इस रोग से ग्रसित हुए पशुओं में बार-बार बैठने और खड़े होने के कारण गर्भाशय में अण्टा लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

बच्चे का लिंग व वजन: यदि बच्चा नर है तथा वजन भी अधिक है तो ऐंठन लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

प्रथम त्रैमास : गर्भावस्था के तीसरे माह पर बच्चे एंटीरियर या पोस्टीरियर अवस्था में रहते हैं, जबकि 4-6 माह के बीच बच्चा घूमकर अधिकांशत: पोस्टीरियर स्थिति में आ जाता है। सातवें महीने में बच्चा अपनी अन्तिम स्थिति अर्थात एंटीरियर अवस्था में आ जाता है। इस प्रकार बार-बार स्थिति बदलने के कारण भी ऐंठन होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

वातावरण

चराई: जिन पशुओं को ऊबड़-खाबड़ व पहाड़ी/पठारी इलाकों में चरने के लिए भेजा जाता है वहां पर ऐंठन अधिक होती है जबकि एक स्थान पर पोषण मिलने वाले पशुओं में यह घटना कम होती है।

बांधकर रखना: जिन पशुओं को गर्भावस्था के दौरान एक ही जगह रखा जाता है और व्यायाम भी नहीं मिलता है उनमें ऐंठन अधिक होती है।

प्रबंधन: कहीं-कहीं गाय व विशेषकर भैंस को गर्भावस्था के अन्तिम त्रैमास में घर से बाहर तालाबों या पोखर में पानी पिलाने ले जाते हैं, वहां पर पशु गर्मी के कारण ठंडे व गीले कीचड़ में लेटता है, जिससे ऐंठन हो सकती है। कभी-कभी पानी पीते समय भी पशु चिकनी मिट्टी में फिसल जाता है इससे भी ऐंठन की सम्भावना बढ़ जाती है।

रख-रखाव की जगह: दुधारू पशु के रख-रखाव की जगह संकरी होने से भी अण्टा लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

कुपोषण: गर्भावस्था विशेषतया अन्तिम दो-तीन महीनों में पशु को पौष्टिक आहार नहीं मिले तो गर्भशय को सहायता देने वाला स्नायु कमजोर हो जाता है। गर्भाशय की संकुचन क्षमता कमजोर हो जाने से तीव्र संकुचन नहीं हो पाता है अत: अण्टा लगने की सम्भावना भी अधिक हो जाती है।

परिवहन: गर्भावस्था में गाय/भैंस को ट्रक इत्यादि में लम्बी दूरी के लिये ले जाया जाता है तो पशु के अन्दर गिरने की सम्भवना अधिक रहती है, इससे भी ऐंठन की सम्भावना बढ़ जाती है।

उत्तेजित करने वाले कारक

दूसरे पशु द्वारा पेट में सींग मार देने, फर्श पर फिसलने, जमीन पर पलटा खाने, अफारा, पेट दर्द के कारण जमीन पर लोटने आदि के कारण भी ऐंठन होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

गर्भित पशु का अधिक उछल-कूद करना: गर्भावस्था में प्रथम बार बच्चा देने वाले पशु अधिक उछल-कूद करते हैं। बार-बार अनियंत्रित तरीके से उठना-बैठना व जमीन पर लोटना भी ऐंठन लगने का कारण हो सकता है।

टॉरसन की प्रकृति

ब्याने की पहली अवस्था के समाप्त होने या दूसरी अवस्था के प्रारम्भ होते समय ऐंठन लगने की संभावना अधिक होती है। प्रथम अवस्था में गर्भाशय ग्रीवा का मुख (मार्ग) खुलता है। ऐंठन घड़ी की दिशा या घड़ी के विपरीत दिशा में हो सकती है।

सामान्यत: ऐंठन दाहिनी दिशा में होती है क्योंकि अधिकांशत: बच्चा दाहिनी साइड में अधिक होता है। भैंसों में अधिकतर दाहिनी दिशा में ही टॉरसन होता है। बांयी दिशा में बहुत कम केस पाये जाते हैं।

लक्षण

- यदि ऐंठन हल्की (45°-90°) है तो स्पष्ट रूप से कोई महत्वपूर्ण लक्षण प्रकट नहीं होता है।
- यदि ऐंठन 180° या ज्यादा हो तो लक्षण स्पष्ट नजर आते हैं।
- 180° टारसन में पेट दर्द, भूख न लगना, कब्ज, जुगाली न करना, बैचेनी, बार-बार पूँछ उठाना जैसे लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं तो समझना चाहिए कि अण्टा लगा है और शीघ्र ही पशुचिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
- जब अण्टा पूरा नहीं लगा होता और 360° से कम होता है, बच्चेदानी भी पूरी तरह से बन्द नहीं हो तो बच्चे की थैली का पानी तो बाहर आयेगा परन्तु बच्चा बाहर नहीं आ पाता है क्योंकि जगह बहुत कम होती है।

पहचान

- पशु काफी समय से ब्याने की कोशिश कर रहा है और न तो बच्चा और न ही पानी की थैली ही बाहर आ रही है तो यह पूरा अण्टा लगा होता है।
- यदि पानी की थैली या बच्चे का कुछ भाग गर्भाशय ग्रीवा से बाहर आ जाता है तो यह अधूरा अण्टा समझना चाहिए।
- यदि बच्चा अन्दर मर जाता है तो माँ बिल्कुल निढ़ाल हो जाती है तथा विषहारी के लक्षण दिखाई देते हैं।
- अण्टे की स्थिति में अन्दर खिंचाव के कारण योनि का ऊपर (पृष्ठ) वाला भाग योनि के अन्दर की ओर खिंच जाता है और बाहर नहीं दिखता है।
- 90° के अण्टे में जरायु फट सकता है लेकिन 180° या इससे अधिक डिग्री के अण्टे में जरायु सुरक्षित रहता है।

प्रभाव

- यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऐंठन की डिग्री क्या है, कितनी गम्भीर है तथा कितने समय से पशु ब्याने का प्रयास कर रहा है।
- अण्टा लगने को समय से पहचान कर उपचार कर दिया जाये तो पशु एवं बच्चे को बचाया जा सकता है। अधिक समय बीत जाने पर यह बहुत मुश्किल हो जाता है।
- यदि ऐंठन 90° या इससे कम है तो पशु के बचने की सम्भावना अधिक रहती है। 180°-270° के टॉरसन में यदि शीघ्र पहचान करके योग्य चिकित्सक से उचित उपचार कराया जाये तो पशु को बचाया जा सकता है। यदि अधिक समय तक कोई ध्यान नहीं दिया गया तो पशु एकदम निढ़ाल हो जाता है तथा उसे बचा पाना मुश्किल होता है।

गोशाला में रोग नियंत्रण हेतु प्रभावी सफाई एवं विसंक्रमण

करम चन्द, दीपक उपाध्याय, चन्द्रकांता जाना, अमोल गुरव एवं एस के बिश्वास

भाकृअनुप- भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, परिसर मुक्तेश्वर-263138

उच्च उत्पादक पशु जैसे कि दुधारू गायों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए गोशाला की सफाई और विसंक्रमण अति आवश्यक है। पशुओं में अधिकतर रोग जीवाणु और विषाणु जनित होते हैं। अत: पशुओं का इन रोगों से बचाव तथा कीटाणुओं को फैलने से रोकने के लिए गौशाला की वैज्ञानिक विधि से सफाई एवं विसंक्रण करना अति आवश्यक है।

गोशाला में स्वच्छता

गोशाला को स्वच्छ रखने के लिए दिन में कम से कम दो बार गोबर एवं मूत्र की सफाई करें। जब पशुओं को चरागाह में अथवा बाड़े में भेजा जाता है वह सफाई का उचित समय होता है। सफाई के लिए प्रति 50 पशु एक मजदूर लगाना चाहिए ।

गौशाला की सफाई हेतु ध्यान देने योग्य बातें

गौशाला की उचित सफाई के लिए आवश्क उपकरण (बेलचा, हाथगाड़ी, झाडू, पानी का पाइप, ब्रश इत्यादि) एवं रसायन (धोने का सोडा, क्लोरीन, फिनाइल, चूना) इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है।

- गोबर को बेलचे से उठाकर हाथगाड़ी में डालकर उचित स्थान पर इक्ट्ठा करना चाहिए और नांद को झाडू से साफ करना चाहिए ।
- पहले फर्श पर पानी का छिड़काव करें जिससे फर्श गीला हो

गोशाला की सफाई एवं विसंक्रमण

जाए तथा सूखी गंदगी व गोबर की सफाई सुविधाजनक हो ।
- फर्श को अच्छी तरह रगड़ कर धोने के बाद साबुन लगाकर और उसके बाद झाडू एवं पानी से साफ करना चाहिए।
- दीवारों पर लगे गोबर के धब्बों की अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए।
- पूरे फर्श पर 2 प्रतिशत फिनाइल का छिड़काव करना चाहिए।
- गोशाला में लगे मकड़ी के जालों को समय-समय पर साफ करना चाहिए।
- दीवारों को ब्रश से साफ करना चाहिए।
- सफाई के पश्चात् गंदा पानी निकास नाली से बाहर निकालना चाहिए।
- 100 से 200 पी.पी.एम. क्लोरीन के घोल को दुग्ध कक्ष के पूरे फर्श पर छिड़काव करना चाहिए।
- एक वर्ष में कम से कम दो बार दीवार की सफेदी करनी चाहिए।
- मक्खी, मच्छरों एवं अन्य कीटों की रोकथाम के लिए बाजार में उपलब्ध कीटनाशकों का उपयोग पशुचिकित्सक से सलाह लेकर करना चाहिए।
- दुग्ध कक्ष के दरवाजे एवं खिड़कियों पर तारों की जाली लगानी चाहिए जिससे मक्खियों एवं मच्छरों का प्रवेश न हो ।

विसंक्रमण विधियाँ

गौशाला का विसंक्रमण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है :

रसायान द्वारा: अम्ल (जैसे कि बोरिक अम्ल,कार्बोलिक अम्ल, फिनॉल आदि), क्षार (जैसे कि चूने का घोल, कास्टिक पोटेशियम हाइड्रोक्साइड आदि) तथा यौगिक (जैसे कि ब्लीचिंग पाउडर, पोटेशियम परमेगनेट आदि) के प्रयोग द्वारा।

सूरज की किरणों द्वारा : गोशाला की सतहों को पर्याप्त समय के

गोशाला की सफाई

लिए सूरज के किरणों के सीधे संपर्क में लाने से महत्वपूर्ण विसंक्रमण होता है।

गर्म हवा द्वाराः यह विसंक्रमण करने की प्रभावी विधि है, लेकिन यह एक महंगी और सीमित विधि है।

गर्म पानी द्वारा : बर्तनों को उबलते पानी में लगभग 5 मिनट विसर्जन द्वारा कीटाणु रहित किया जा सकता है। यह तरीका फर्श को कीटाणु रहित करने के लिए संतोषजनक तरीका नहीं है क्योंकि फर्श में डालने से पानी की गर्मी जल्द ही कम हो जाती है और यह प्रभावी नहीं होता है।

आग द्वाराः अधिकतर बर्तन आग के द्वारा विसंक्रमित किए जा सकते हैं। इस विधि से सभी जीवाणुओं और स्पोरों को खत्म किया जा सकता है।

कीटाणुनाशक का चयन

कीटाणुनाशक का चयन करने से पहले उसका निम्नलिखित मूल्यांकन करना जरूरी है।

- विघटन के गुण
- उपलब्धता
- लागत
- उपयोग करने से पहले अतिरिक्त तैयारी
- ऊतकों की विषाक्तता
- धातु, लकड़ी, सीमेंट, फर्श आदि पर अभिक्रिया
- अगर पशुओं द्वारा आंतरिक रूप से लिया जाता है तो उसका प्रभाव
- गंध, रंग और कपड़ों पर अभिक्रिया आदि

घोल इस प्रकार से इस्तेमाल करना चाहिए कि वह सतह को ढ़क सके। स्प्रे अथवा पाउडर का इस्तेमाल बड़ी जगह के लिए कर सकते हैं।

कीटाणुनाशक की क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

- कीटाणुनाशक की मात्रा
- अवधि
- कीटाणुनाशक के घोल का तापमान
- घोल पुराना संग्रहित किया हुआ है या ताजा है
- उपयोग का तरीका : छिड़काव, स्प्रे, ब्रशिंग, पाउडर इत्यादि
- कीटाणुनाशक और कीटाणु को संपर्क में लाने के लिए सतह की उचित सफाई
- सतह का प्रकार जैसे कीचड़, धातु, लकड़ी, रबर इत्यादि।

प्रयोग की विधि

- कपड़े धोने का सोडाः 30 प्रतिशत (सोडियम कार्बोनेट) का उबलते पानी में घोल बनाकर बर्तन एवं फर्श पर छिड़काव और धुलाई करें।
- चूना एक गैलन पानी में एवं 5 प्रतिशत फिनॉल का फर्श, दीवार और जमीन पर छिड़काव करें। नव-निर्मित घोल का ही प्रयोग करें।
- पोटैशियम परमैंग्नेट का 1:10,000 अनुपात में पानी के घोल से फर्श, नांद व नाली की धुलाई करें ।
- मरक्यूरिक क्लोराइड का 1:10,000 अनुपात में घोल बनाकर धातु के सामान एवं कपड़े की धुलाई करें ।
- फिनॉल (कार्बोलिक एसिड) का 3-5 प्रतिशत घोल बनाकर धातु के सामान एवं कपड़े की धुलाई करें ।
- पानी में 5 प्रतिशत फार्मलीन और 15 ग्राम पोटैशियम परमैंग्नेट प्रति वर्गमीटर जगह के हिसाब से घर के भीतर की धुलाई व धूम्रीकरण करें।

स्वच्छ दुग्धशाला

- सिल्वर नाइट्रेट का पानी में 10 प्रतिशत घोल बनाकर आंखों में संक्रमण होने पर कुछ बूंदे डालें।
- कॉपर सल्फेट 28 ग्राम को 8000 गैलन पानी में घोल बनाकर तालाब, कुआं, आदि में छिड़काव करें। यह एक अच्छा फफूंदीनाशक है ।
- सोडियम हाइड्राक्साइड 2 प्रतिशत (कीटाणुनाशक के लिए) तथा 5 प्रतिशत (स्पोर नाशक के लिए) से फर्श, नाली एवं उपकरण की धुलाई करें।
- इथाइल एल्कोहल के पानी में 70 प्रतिशत घोल से त्वचा एवं हाथों की सफाई करें।
- आयोडीन का 2-5 प्रतिशत एल्कोहल में घोल बनाकर त्वचा के जख्मों को धोयें।
- ब्लीचिंग पाउडर (कैल्शियम हाइपोक्लोराइट) 30 प्रतिशत को फर्श एवं नाली में छिड़कें।
- सोडियम हाइपोक्लोराइट (200 पीपीएम मौजूद क्लोरीन) से बर्तन को धोएं।
- क्रिस्टल वायलेट का 2 प्रतिशत घोल बनाकर जख्मों को पोछें। घोल को कपड़ों से दूर रखें।
- बोरिक अम्ल के 5-6 प्रतिशत घोल से फर्श, दीवार उपकरण एवं त्वचा की धुलाई करें।

दुहान पूर्व थन की सफाई

सावधानियाँ

सभी विसंक्रमण खासकर रासायनिक पाउडर या घोल सामान्य रूप से जहरीले होते हैं और त्वचा, आंखो एवं श्वसन मार्ग को नुकसान पहुंचाते हैं। इनका इस्तेमाल करने वाले व्यक्तियों को इन्हें प्रयोग करते समय पर्याप्त सावधानियाँ बरतनी चाहिए। आंख, नाक, मुँह को रसायनिक पाउडर से बचाना चाहिए। इनका इस्तेमाल करते समय चश्में, दस्ताने, मास्क, श्वास यंत्र का इस्तेमाल करना चाहिए ।

किलनी संक्रमण से दुधारू पशुओं का बचाव

करण वीर सिंह[1], विकास वोहरा[1], अवनीश कुमार[2] एवं मनीषी मुकेश[1]

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001
[2]बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ - 226025

किलनी (टिक) छोटे बाह्य-परजीवी हैं, जो स्तनधारियों, पक्षियों और कभी-कभी सरीसृपों एवं उभयचरों के शरीर पर रहकर उनका खून चूसकर जीते हैं। इन्हें 'कुटकी' और 'चिचड़ी' भी कहते हैं। ये परजीवी सीधे नुकसान करने के कारण और रोगाणुओं के प्रसार द्वारा पशु-पालन के लिए आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। किलनी, रीशिपेसफलस माइक्रोप्रलस के अतिरिक्त, घरेलू पशुओं के लिए सबसे अधिक महत्व वाली प्रजातियां रीशिपेसफलस अन्युलटस हैं, जो उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में अधिक व्यापक हैं।

किलनी संक्रमण से पशुओं में प्रतिकूल लक्षण

पशुओं में खुजली एवं जलन होना, दुग्ध उत्पादन में कमी आना, भूख कम लगाना, खाद्य रूपान्तरण दर का घटना, रक्ताल्पता (एनीमिया), चमड़ी का खराब हो जाना, बालों का झड़ना एवं पशुओं में तनाव और चिड़चिड़ापन का बढ़ना आदि। कम उम्र के पशुओं पर इनका प्रतिकूल प्रभाव ज्यादा होता है। इनका प्रकोप सर्दियों में आम है, जबकि जाड़े के अंत और बसंत के प्रारम्भ (फरवरी/मार्च) में इनकी संख्या अधिकतम स्तर पर देखी जाती है। बाड़ों में बांधकर रखे जाने वाले पशुओं में स्वतंत्र रूप से रखे जाने वाले पशुओं की तुलना में इनके संक्रमण की सम्भावना लगभग दोगुना ज्यादा होती है।

किलनियां बहुत से रोगों की वाहक भी होती हैं जैसे लाइम रोग, क्यू ज्वर, बबेसिओसिस आदि। ये कई जूनोटिक रोगों के वैक्टर के रूप में मच्छरों के बाद दूसरे स्थान पर हैं तथा इन रोगों के प्रकोप द्वारा नुकसान पशु उत्पादकता के लिए एक बड़ी बाधा है। यह पशुओं और मनुष्यों में रूग्णता और मृत्यु दर के कारक भी हैं, इसी कारण किलनी प्रजातियों को घातक रोगाणुओं की वैक्टर के रूप में मान्यता दी गई है। क्रीमिया-कांगो रक्तस्रावी बुखार वायरस, कायासानूर वन रोग वायरस, बबेसिफ, थाईलेरिया, रिकेट्सिया कोनोरी एनप्लाज्मा, मारगीनेल आदि इनके द्वारा हो रहे नुकसान अच्छी तरह से मूल्यांकित हैं। एक सुप्रबंधित पशु फार्म पर जहां पशुओं के विचरण की आजादी हो, पर्याप्त मात्रा में अच्छा पोषण उपलब्ध हो और पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी हो, वहां पर जूँ और किलनी की उपस्थिति का पशुओं के स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु वातावरणीय परिस्थितियां (मुख्यतया अत्यधिक ठंडी) इन बाह- परजीवियों की सक्रियता को अत्यधिक बढ़ा देती हैं। पशुओं को भीतर व बाहरी परजीवियों के प्रकोप से भारी नुकसान होता है और उन का दूध उत्पादन घट जाता है। पशु कमजोर हो जाते हैं। भीतरी परजीवियों के प्रकोप से भैंस के बच्चों में 3 महीने की उम्र तक 33 प्रतिशत की मौत हो जाती है और जो बच्चे बचते हैं, उन का विकास बहुत धीमा होता है।

बचाव

पशुओं को हमेशा साफ-सुथरे माहौल में रखना चाहिए और जितना सम्भव हो धूप में रखना चाहिये। बीमार होने पर पशुओं को सेहतमंद पशुओं से तुरंत अलग कर देना चाहिए और उन का इलाज कराना चाहिए। इसके अलावा पशुपालकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- पशुओं को सेहतमंद रखने और बीमारी से बचाने के लिए उचित समय पर टीका लगवाना चाहिए ।
- गाय एवं भैंस को गलघोंटू, एंथ्रेक्स, लंगड़ी, संक्रामक गर्भपात, खुरपका-मुंहपका, पोकंनी इत्यादि बीमारियों से बचाना चाहिए। पशुओं को ऐसी बीमारियों से बचाव का एक मात्र उपाय टीकाकरण है।
- दुधारू पशुओं को नियमित रूप से पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए । बीमार पशुओं का इलाज जल्दी कराना चाहिए, ताकि पशु रोगमुक्त हो सकें । साथ ही बीमार पशु के बरतन व जंजीरें पानी में उबाल कर जीवाणुरहित करने चाहिए । फर्श और दीवारों को भी कास्टिक सोडा के घोल से साफ करना चाहिए ।
- परजीवी के प्रकोप से बड़े पशुओं में कब्ज, एनीमिया, पेटदर्द व डायरिया के लक्षण दिखई देते हैं। इसलिए वर्ष में 2 बार भीतरी परजीवीयों के लिए कृमिनाशक दवा का प्रयोग करना चाहिए।

किलनी संक्रमण से प्रभावित गाय

- बाह्य परजीवी जैसे किलनी, कुटील व जूं से बचने के लिए समय-समय पर पशुओं की सफाई की जानी चाहिए । पशुओं में इन का ज्यादा प्रकोप हो जाने पर निकट के पशु चिकित्सक से तुरंत संपर्क करना चाहिए ।
- नए खरीदे गए पशुओं को कम से कम तीन सप्ताह तक अलग रख कर उन का निरीक्षण करना चाहिए। इस अवधि में अगर पशु सेहतमंद दिखाई दें और उन्हें टीका न लगा हो, तो टीकाकरण अवश्य करा देना चाहिए ।

अत: अगर पशुओं को साफ-सुथरे माहौल में रखा जाए, उन्हें साफ पानी और पौष्टिक आहार दिया जाए और नियमित रूप से टीकाकरण कराया जाए तो वे हमेशा सेहतमंद बने रहेंगे और उन से पर्याप्त मात्रा में दूध मिलता रहेगा।

रोकथाम

जब पशुओं में अत्यधिक किलनी अतिक्रमण से उनके सामान्य व्यवहार में परिवर्तन हो तो रोकथाम के सार्थक प्रयास की आवश्यकता होती है। इनकी रोकथाम के लिए निम्न उपाय अपनाऐ जा सकते हैं:

- खाद्य तेल (जैसे अलसी का तेल) का एक पतला लेप लगाना चाहिए।
- साबुन के गाढ़े घोल का इस्तेमाल एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार करना चाहिए।
- आयोडीन को शरीर के ऊपर एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार रगड़ना चाहिये।
- लहसुन के पाउडर का शरीर की सतह पर इस्तेमाल करें।
- एक हिस्सा एसेन्सियल आयल और दो-तीन हिस्सा खाद्य तेल को मिलाकर रगड़ना चाहिए।
- किलनी के विरूद्ध होम्योपैथिक ईलाज भी काफी उपयोगी है, अत: इसका प्रयोग करना चाहिए।
- पाइरिथ्रम नामक वानस्पतिक कीटनाशक भी काफी उपयोगी होता है।
- पशुओं की रीढ़ पर दो-तीन मुट्ठी सल्फर का प्रयोग करना चाहिए।
- चूना-सल्फर के घोल का इस्तेमाल 7-10 दिन के अंतराल पर लगभग 6 बार करना चाहिये ।

किलनी नियंत्रण में प्रयोग होने वाले आइवरमेक्टिन इंजेक्शन के प्रयोग के बाद दूध को कम से कम दो से तीन हफ्तों तक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। कुछ हर्बल कंपनियां है जिनकी दवाइयां बाजार में आ चुकी हैं और इनका प्रयोग छोटे पशुपालकों ने धीरे-धीरे करना शुरू कर दिया है।

आज टिक वैक्टर से उत्पन्न खतरों का पुनर्मूल्यांकन करने और टिक नियंत्रण अनुसंधान कार्यक्रम को प्राथमिकता देने की जरूरत है। प्रमुख टिक जनित मानव और पशुओं के रोगों और निहित प्रतिरोध पर जोर देने के साथ-साथ वेक्टर नियंत्रण अनुसंधान के क्षेत्र में प्रगति पर केंद्रित टीका और एकीकृत टिक नियंत्रण कार्यक्रम के विकास की जरूरत है।

अपारम्परिक पशु आहारः कुशल डेयरी उत्पादन के लिए सस्ते पोषक संसाधन

ललित कुमार मौर्या एवं एस के साहा

भाकृअनुप भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली-243122

पारम्परिक आहार की निरन्तर बढ़ती कीमतों और उपलब्धता की कमी की वजह से आज हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि हम अपारम्परिक आहार को न सिर्फ खोजें बल्कि उपयोग में भी लायें। हमें निरन्तर यह प्रयास करना चाहिए कि हम अधिक से अधिक मात्रा में अपारम्परिक आहार उपयोग में लाए। पशुओं को खिलाने योग्य बहुत से अपारम्परिक आहार बहुतायत में उपलब्ध हैं, जिनमें मुख्यतः फसलों के अवशेष, औद्योगिक सहउत्पाद, पत्तियों तथा बीजों से बने आहार, पशु वधशालाओं के सहउत्पाद, चाय की पत्तियों के अवशेष, आम की गुठली और पशुओं से प्राप्त कार्बानिक अवशेष आदि मुख्य हैं। अधिकतर अपारम्परिक आहारों में कुपोषक तत्व अधिक मात्रा में पाये जातें हैं। अतः हम प्रोटीन, ऊर्जा युक्त अपारम्परिक आहार खोजें जिससे महंगे पारम्परिक आहार की जगह इन्हें उपयोग में लाया जा सके।

अपारम्परिक आहारों का विवरण

ये वह आहार हैं जो परम्परागत रूप से जानवरों को खिलाए नहीं जाते। अपारम्परिक आहार को खिलाने से पूर्व अच्छी तरह प्रसंस्करण करना अति आवश्यक है क्योंकि इनमें अनेक प्रकार के कुपोषक तत्व होते हैं । आहार का प्रसंस्करण करने से न केवल उसका पाचन अच्छा होता है अपितु इससे आहार का व्यर्थ होना भी कम हो जाता है। अपारम्परिक खल जैसे नीम, नाइजर, अरण्ड, करंज, नारियल, कपास तथा जैट्रोफा आदि की खल उपयोग करने से पूर्व इनकी अशुद्धियों का प्रसंस्करण आवश्यक है। अपारम्परिक खली को उष्मा उपचार द्वारा प्रसंस्करण करना एक आसान और सस्ता उपाय है जो प्रोटीन को बाईपास करने में मदद करता है और लेक्टिन, टिप्सिन तथा फास्फेट आदि कुपोषक तत्वों की मात्रा को कम करता है।

नीम की खली

नीम की खली स्थानीय स्तर पर अधिक मात्रा में उपलब्ध है जिसे प्रसंस्करण के उपरान्त अपरम्परागत पशु आहार के रूप में उपयोग किया जा सकता है। नीम की खली में प्रोटीन की मात्रा 12-25 प्रतिशत तक होती है और इसमें महत्वपूर्ण अमीनो एसिड भी होते हैं। नीम की खली की कड़वाहट उसमें उपस्थित लिमोनाइड रसायनों जैसे एजाडिरोनए एपोक्सी एजाडिरोन तथा एजाडाइराडिओन की वजह से होती है। नीम की खली को उपयोग में लाने योग्य बनाने के लिए सोडियम हाइड्रॉक्साइड की मदद से इसका रसायनिक प्रसंस्करण करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में खली को 1.2 प्रतिशत सांद्रता वाले सोडियम हाइड्रॉक्साइड में 24 घण्टों के लिए भिगोना पड़ता है। अपने देश में नीम की खली का लगभग एक मिलियन टन प्रति वर्ष उत्पादन होता है जो कि अधिकांश छोटे किसानों के लिए पर्याप्त है।

अरंड

कृषि उद्योगों से कैस्टरबीन मील (सी बी एम) सहउत्पाद के रूप में प्रचुर मात्रा में होती है। ब्राजील के बाद भारत विश्व में कैस्टरबीन का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। भारत में कैस्टरबीन का उत्पादन लगभग 59 लाख टन प्रति वर्ष है (एफ.ए.ओ. 2012)। यद्यपि इसमें क्रूड प्रोटीन अधिक (35-40%) होता है फिर भी इसका उपयोग पशु आहार के रूप में बहुत कम ही किया जाता है क्योंकि इसमें रेसिन नाम का कुपोषक तत्व पाया जाता है। पशुओं के आहार में उपयोगी बनाने के लिए इसको 2 प्रतिशत नमक, 25 प्रतिशत चूने का पानी और 1 प्रतिशत सोडियम हाइड्रॉक्साइड से रसायनिक प्रसंसकरण करना पड़ता है।

करंज की खली

करंज का पेड़ मरूभूमि तथा विपरीत परिस्थितियों में भी उग जाता है। भारत में लगभग 1.5 लाख टन करंज की खली का उत्पादन होता है। इसमें लगभग 26 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होती है। इसमें कंजिन नाम का कुपोषक तत्व पाया जाता है जिसकी वजह से इसका उपयोग पशु आहार में नहीं हो पाता है। करंज की खली को खाने योग्य बनाने के लिए इसका सोडियम और कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड से उपचार करना चाहिए।

नारियल पशु आहार (कोकोनट मील)

अपने देश में लगभग 3 लाख टन/प्रति वर्ष कोकोनट मील की

उप्लब्धता है। इसमें लगभग 21 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पाई जाती है। इसमें मैनन पोलीसैकराइड अधिक मात्रा में होने के कारण इसकी उपयोगिता कम हो जाती है।

कॉटन सीड मील

कॉटन सीड मील में लगभग 38 प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता वाली क्रूड प्रोटीन पाई जाती है। भारत में इसका उत्पादन लगभग 4 मिलियन टन प्रतिवर्ष होता है। इसमें गॉसीपॉल नामक कुपोषक तत्व पाया जाता है जिसकी वजह से इसे पशु आहार के रूप में उपयोग करना कठिन होता है। गॉसीपॉल के दुष्प्रभाव को कम करने के लिए पशु आहार में आयरन सल्फेट का उपयोग करना चाहिए।

जट्रोफा मील

जट्रोफा मील की पशु आहार के रूप में उपयोगिता पर अभी विस्तार से शोध नहीं हुआ है। जट्रोफा मील में क्रूड प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होती है। इसमें अनेक प्रकार के कुपोषक तत्व भी होते हैं। उपयोग में लाने से पूर्व इसका प्रसंस्करण आवश्यक है।

सेब का अपशिष्ट

सेब के मौसम में क्षतिग्रस्त सेब तथा रस निकालने के बाद का अवशेष बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। यह ऊर्जा (टी.डी.एन. 60 प्रतिशत) तथा क्रूड प्रोटीन (12 प्रतिशत) का अच्छा स्रोत है।

टैपिओका मील (कसावा मील)

कसावा मील टैपिओका की जड़ों से स्टार्च के निर्माण के दौरान प्राप्त उत्पाद है। इसमें स्टार्च प्रचुर मात्रा में होती है। इसकी उपलब्ध्ता लगभग 65 हजार टन है जो कि अधिकांशत: पशु आहार के रूप में उपयोग होती है। इसमें लगभग 8-12 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पायी जाती है तथा यह ऊर्जा का अच्छा स्त्रोत है (टी.डी.एन. 63 प्रतिशत)। इसमें हाइड्रोसायनिक एसिड नाम का कुपोषक तत्व पाया जाता है।

टेमरिन्ड सीड पाउडर (इमली के बीज)

इमली का पेड़ बड़ा तथा पत्तीदार होता है । इसके बीजों की उपलब्धता भारत में लगभग 12 मिलियन टन है। इमली के बीज में लगभग 12 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होती है। इसमें टैनिन नाम का कुपोषक तत्व होता है। इसको रात भर ठण्डे पानी में भिगोने पर टैनिन की मात्रा कम हो जाती है।

कॉर्न ग्लूटिन मील

कॉर्न ग्लूटिन मील मक्का से स्टार्च निर्माण करते समय सूखे के रूप में मिलता है। इसमें लगभग 58 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन और 80 प्रतिशत टी. डी.एन. होता है।

ग्वार मील

ग्वार का उपयोग अनाज, चारा और सब्जी के रूप में किया जाता है। यह सूखा प्रतिरोधी पौधा है। ग्वार मील, ग्वार गम उद्योग का उप-उत्पाद है। भारत सालाना लगभग 0.6 मिलियन टन ग्वार उत्पादन कर रहा है। ग्वार के मील मे 75-80 प्रतिशत टी.डी.एन. और 50-55 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पाई जाती है जो कि आवश्यक अमीनो एसिड का अच्छा स्रोत है। क्योंकि इसमें लाइसीन (2.55 प्रतिशत), सिस्टीन (1.16 प्रतिशत)और ग्लाइसिन (4.61 प्रतिशत) प्रचुर मात्रा में होती है। ग्वार मील में दो कुपोषक तत्व मिलते हैं - एंटी ट्रिप्सिन और अपशिष्ट ग्वार गम ।

निष्कर्ष

भारत में प्रति पशु उत्पादन में कमी का मुख्य कारण समुचित मात्रा में पोषक तत्वों का न मिलना तथा चारे की गुणवत्ता में कमी का होना है। अपने देश में हरा चारा, सूखा चारा तथा दाना तीनों ही अवश्यकता से बहुत कम मिल पा रहे हैं। इसे देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि अब हम अधिक से अधिक अपारम्परिक आहारों को खोजें और उनका उपयोग करें । ऐसा करने से न केवल पशुओं का उत्पादन खर्च कम होगा बल्कि अपशिष्ट को उपयोग में भी लाया जा सकेगा।

जेर का अटकना: एक गम्भीर प्रसवोत्तर जटिलता

उमर दीन[1], नीरज श्रीवास्तव[2] एवं मेघा पांडे[2]

[1]भाकृअनुप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान, बरेली-243122

[2]भाकृअनुप-केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, मेरठ - 25001

गर्भावस्था के दौरान मादा और भ्रूण के बीच झिल्लियों का जुडाव होता है जिसके जरिए भ्रूण को पोषण मिलता है और अपशिष्ट पदार्थ का उर्त्सजन होता है। इन झिल्लियों को जेर/ अपरा/ गर्भानाल कहते हैं। ब्याने के समय यह जुड़ाव अलग हो जाता है तथा ब्याने की तीसरी अवस्था में गर्भाशय का संकुचन जारी रहने से जेर बाहर निकल जाती है। ब्याने के बाद जेर का जल्दी बाहर निकलना बहुत जरुरी होता है अन्यथा जेर संक्रमण का स्रोत बन जाती है। इस से पशु की भविष्य की उत्पादन और प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

गायों में प्रसव के बाद जेर 3 से 8 घंटे के दौरान स्वयं गिर जाती है, लेकिन यदि जेर 12 घंटे के बाद भी गर्भाशय में रहे और बाहर न गिरे तो इस को जेर का अटकना, अपरा का प्रतिधारण या बरकरार रखा जाना कहते हैं। भारत में जेर का अटकना सबसे आम प्रसवोत्तर जटिलता है। जिसके कारण मादा का ऋतु चक्र बिगड़ जाता है, जिसके कारण पशुपालकों को वित्तीय नुकसान होता है । इसलिए यह जरूरी है कि पशुपालाक को इसके बारे में जानकारी हो। भैंसों, भेड़ों और बकरियों की तुलना में गायों में जेर अटकना अधिक होता है ।

लक्षण

- सामान्य ब्यांत, गर्भापात और कठिन प्रसव के 12 घंटे के बाद भी जेर योनि मार्ग से होते हुए योनिमुख के बाहर लटकती दिखाई देती है, लेकिन कई बार जेर जननांगो के भीतर ही रहती है ।
- बहुत सी गायों में बीमारी के कोई भी लक्षण नहीं दिखते, हालांकि जेर के प्रतिधारण से प्रभावित गायों में कम भूख, जुगाली न करना, दुग्ध उत्पादान में कमी जैसे मामूली लक्षण देखे जा सकते हैं। ऐसे पशुओं में जेर गीली चिकनी और सामान्य गुलाबी रंग की होती है ।
- कुछ गायों में जेर के प्रतिधारण के कारण गर्भाशय में गंभीर संक्रमण हो जाता है जिसके कारण बुखार, अपच या अवसाद हो जाता है परिणाम स्वरूप स्तन की सूजन पेट की झिल्ली की सूजन या योनि की सूजन हो जाती है। इस प्रकार के पशुओं में जेर सूख जाती है एवं गर्भाशय से बदबूदार स्राव निकलता है। यह आपात स्थिति है, ऐसी स्थिति में तुरंत पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए ।

कारण

गर्भाशय की जड़ता तथा जेर की सूजन के कारण जेर गर्भाशय से अलग नहीं हो पाती। लेकिन कुछ और भी कारण होते हैं जोकि जेर को अटकने में सहायता करते है जैसे कि :

- संक्रमण रोग जो जेर की सूजन करते हैं जैसे कि ब्रूसेलोसिस, विब्रिवोसिसा, तपेदिक, योनि का फफूंद संक्रमण आदि,
- रोग जो गर्भाशय की जड़ता करते है जैसे कि गर्भाशय की मरोड़, भ्रूण का बड़ा आकार, कठिन प्रसव, भ्रूण झिल्लियों का जलोदर आदि,
- अग्रिम गर्भवती मादा का रेल, लारी आदि के माध्यम से परिवहन,
- गर्भकाल के दौरान ऑक्सीटोसिन हार्मोन की कमी,
- ब्याने के समय पशु और ब्याने वाले कमरे की सफाई ना करना,
- गर्भपात या जुड़वा बच्चों का जन्म,
- विटामिन्स और खनिज पदार्थ विशेष रूप से विटामिन ए और ई की कमी। विटामिन ए गर्भाशय और जेर के रखरखाव और प्रतिरोध के लिए आवश्यक है। विटामिन ई और सेलेनियम की कमी से जेर के अटकने के मामलों में वृद्धि होती है। रक्त में कैल्शियम का निम्न स्तर गर्भाशय निष्क्रियता का कारण हो सकता है जिसके कारण भ्रूण झिल्ली का अटकन (प्रतिधारण) होता है,
- आनुवंशिक रूप से अधिक उपज देने वाली डेरी गायों तथा प्रसव के समय अधिक पोषण ग्रहण करने वाली गायों में अधिक प्रतिधारण होने का खतरा होता है।

जेर अटकने के परिणाम

पशुपालकों को कारणों के बारे में जानकारी का होना पशु को बीमारी से बचाव में सहायता प्रदान करेगा।

रोकथाम के उपाय

ऐसी गर्भवती मादाओं जिनमें, पूर्व में जेर का प्रतिधारण हो चुका हो तो से होने से रोकने के लिए पशुपालकों को निम्नलिखित उपायों का पालन करना चाहिए :

गर्भावस्था की पुष्टि के बाद

- विटामिन से भरपूर हरा चारा दें
- गर्भवती मादा को संतुलित राशन दें जिसमें खनिज पदार्थ सही मात्रा (50 ग्राम प्रतिदिन) में हों
- मादा को व्यायाम कराना चाहिए जिसके लिए प्रतिदिन 1 घंटा घुमायें)।

ब्याने से दो महीने पूर्व

- गर्भकाल के सातवें माह से अंकुरित काले चने प्रारम्भ में 250 ग्राम प्रतिदिन दें और धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ाते हुए 1 किलोग्राम प्रतिदिन कर दें। इससे विटामिन ई और सेलेनियम की संभावित कमी पूरी होगी और जेर का प्रतिधारण कम होगा।

ब्याने से दो सप्ताह पूर्व

- ब्याने से एक सप्ताह पहले सोडियम सेलेनाइट का 150 मि.ग्रा. का इंजेक्शन तथा 500 मि.ग्रा. विटामिन ई का इंजेकशन मादा को दें।
- ब्याने से 15 दिन पहले मादा को 750 ग्राम गेहूँ का दलिया पानी में उबाल कर रोजाना दें।
- ब्याने के 15 दिन पहले मादा को कैल्शियम खिलाना बंद कर दें।
- प्रसव के पूर्व संक्रमण को रोकने के लिए ब्याने वाले कमरे की स्वच्छता का सख्ती से पालन करें।

ब्याने के दिन

- अगर पशु के पेट में दर्द हो या प्रक्रिया में कोई प्रगति न हो तो तुरन्त पशु चिकित्सक की सहायता लें।
- ब्याने के दो घंटे के भीतर मादा को काढ़ा पिलाने से जेर जल्दी बाहर निकल जाती है। काढ़ा बनाने के लिए सौंफ, अजवाइन, मेथी, काला जीरा, सोआ सूंड, बड़ी इलायची, कडू एवं भूरी मिर्च को 10-10 ग्राम ले कर पीस लें और फिर तीन लीटर पानी में उबालें, जब पानी आधा बच जाए, थोड़ा सा गुड़ डाल कर पशु को पिलाएं। इसे पिलाने से पूर्व पशु चिकित्सक से सलाह अवश्य लें।
- ब्याने के शीघ्र बाद ऑक्सीटोसिन का इंजेक्शन (6-10 मि.ली.) और साथ में डेक्स्ट्रोज का घोल (10 प्रतिशत) तथा कैल्शियम बोरोग्लूकोनेट का इंजेक्शन देने से जेर की निकासी में मदद मिलती है।
- ब्याने के बाद 50 ग्राम चाय की पत्ती को 300 मिली पानी मे काढ़ा बनाकर पशु को पिलाएं।
- ब्याने के बाद 250 ग्राम अलसी बीज को 2 लीटर दूध में मिला कर पशु को 3 दिन पिलाएं।
- ब्याने के तुरंत बाद, बछड़े को स्तन पान कराना चाहिए।

जेर प्रतिधारण का उपचार

- साधारण अवस्था में जब तक गाय के स्वास्थ्य में किसी गिरावट के संकेत न मिलें तब तक उपचार की जरूरत नहीं होती। जेर के प्रतिधारण का निम्न तरीकों से उपचार किया जा सकता है:

जेर को हाथ से निकालना : यह उपचार का पुराना और साधारण तरीका है। जेर को हाथ से निकालने में जल्दबाजी न करें, ब्याने के 24-72 घंटे बाद ही निकालने का फैसला करें, क्योंकि कभी-कभी इसका मादा की भविष्य की प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

- अगर तापमान 103°F से अधिक हो या फिर पशु के पेट कों सूजन हो, उस समय जेर को हाथ से ना निकालें,

जेर का अटकना

- अगर जेर गर्भाशय से मजबूती से जुड़ी हो और अलग करने में मुश्किल हो तो जेर को जबरदस्ती ना निकालें, अगले दिन कोशिश करें,
- जेर को निकालने के लिए 20 मिनट से अधिक समय न लगाएं,
- पशु चिकित्सक से ही जेर निकलवाएं और 5 दिन तक प्रतिजैविक दवाई दें।

गर्भाशय संकुचन के लिए दवाई देना

हारमोन्स जैसेकि ऑक्सीटोसिन एवं एस्ट्रोजन ब्याने के तुरंत बाद असरदार होते हैं। इन दवाओं के उपयोग से पहले पशु चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

सहायक उपचार

जिस पशु को उच्च तापमान, निर्जलीकरण (पानी की कमी), अपच हो या गर्भाशय से बदबूदार स्राव हो तो प्रतिजैविक दवाई, सूजन को कम करने वाली दवाई कम से कम 5 दिन के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से दें।

परम्परागत तरीके से इलाज

- 200 ग्राम बरगद की जड़ को 2 लीटर पानी में आधा रहने तक उबाल कर पशु को 300 मिली दिन में 3 बार दें।
- 100 ग्राम बांस की पत्ती, 100 ग्राम पोई, 100 ग्राम चावल की भूसी को मिलाकर पशु को ब्याने के तुरंत बाद खिलायें।
- 1 किलो गुलाब की पंखुड़ियों को 1 किलो चीनी में मिला कर, 1 लीटर पानी में उबालें जब पानी 250 मि.ली. बच जाए उबालना बंद कर दे एवं बचे घोल को 50 मि.ली. प्रतिदिन 5 दिन तक पिलाएं। परम्परागत ईलाज से पूर्व नजदीक के पशुचिकित्सक या अनुभवी किसान से सलाह अवश्य लें।

प्रबंधन/पशुपालक क्या करें, क्या न करें?

- प्रतिधारण के उपचार के मामलों में हमेशा पशु चिकित्सक से सलाह अवश्य लें,
- योनि मुख से बाहर लटकी हुए जेर पर चप्पल या पत्थर से वजन (भार) न डालें,
- जेर को कभी भी योनिमुख के पास न काटे क्योंकि बचा हुआ भाग गर्भाशय में वापिस चला जाता है और लम्बे समय तक वहां बना रहता है,
- उपचार के दिनो में प्रभावित गायों का दूध मानव उपयोग में नही लेना चाहिए,
- जेर के बाहर लटके हुए भाग को मिट्टी, पेशाब, गोबर, कुत्ते, पक्षी तथा मक्खियों से बचाएं,
- जेर के अटकन के सभी मामलों में, ब्याने के 30 दिन बाद मादा सम्बन्धी जांच पशु चिकित्सक से करायें, अगर गर्भाशय की सूजन या फिर कोई अस्वाभाविक स्राव हो तो उसका ईलाज पशु चिकित्सक से कराएं,
- गंभीर रूप से प्रभवित मादा को ब्याने के 90 दिन बाद तक प्रजनन न करायें,
- अगर गर्भकाल के आखिरी 3 महीने में गर्भपात हो और साथ में जेर न गिरे तो पशु की ब्रूसेलोसिस के लिए जाँच करायें,

प्रभावित गायों का उचित प्रबंधन और समय पर उपचार न केवल आर्थिक नुकसान को कम करता है बल्कि मादा की प्रजनन क्षमता को भी बनाए रखता है।

साइलेज- अनावृष्टि में पशुओं के लिए एक पौष्टिक आहार

शालू कुमार[1], आर जी बुरटे[1], हरेन्द्र सिंह चौहान[2], बी जी देसाई[1], आर के पुंडीर[3], पी एस डांगी[3] एवं डी जे भगत[1]

[1]डॉ बी एस कोंकण कृषि विद्यापीठ दापोली, जिला- रत्नागिरी, महाराष्ट्र-415712

[2]सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ, उत्तर प्रदेश-250510

[3]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल- 132001

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी करीब 70 प्रतिशत जनसख्या कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। इसलिए कृषि एवं पशुधन को हमारे देश का मेरूदंड कहा जाता है। कृषि के संदर्भ में एक बात सत्य है कि हम कितना भी प्रयास कर लें किन्तु हम उसका क्षेत्रफल नहीं बढ़ा सकते। इसीलिए हमारे ग्रामीण समुदाय के लिए पशुपालन का महत्व बढ़ा है एवं इससे हमें दूध, मांस एवं कृषि कार्य के लिए शक्ति भी प्राप्त होती है। हमारे देश में संसार के कुल पशुधन का लगभग 20 प्रतिशत पशुधन पाया जाता है, परन्तु उनकी सख्या अनुरूप उत्पादन नहीं मिल पाता है, इसका मुख्य कारण पशुओं को उनके उचित विकास के लिए समुचित आहार का नहीं मिल पाना है।

चारा पशुओं के लिए एक प्राकृतिक आहार है, जिससे पशु को उसके अच्छे विकास एवं उत्पादन के अनुकूल सभी आवश्यक पोषक तत्व मिल जाते हैं तथा पशु के उत्पाद में बढ़ोत्तरी होती है, साथ ही साथ उनका स्वास्थय भी अच्छा बना रहता है और उनके उत्पादक जीवन में बढ़ोत्तरी होती है।

हमारे देश में पशुओं की संख्या के अनुसार चारे एवं राशन आदि की कमी लगातार बनी रहती है जिसका मुख्य कारण है कि पशुपालक चारे एवं घास आदि को पशु संख्या के अनुसार नहीं उगााते हैं। आमतौर पर हमारे देश में हरा चारा केवल वर्षा ऋतु में ज्वार, बाजरा, मक्का, स्थानीय घास एवं सर्दी में बरसीम, गन्ने का अगोला, जौ एवं जई आदि के रूप में उपलब्ध रहता है। ग्रीष्मकाल की तुलना में वर्षा एवं शरद ऋतु में पशुओं का स्वास्थ्य और उत्पादन अच्छा रहता है। ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जून) में चारे की विकट समस्या हो जाती है, जिससे ग्रीष्मकाल में पशुओं के उत्पादन में कमी देखी जाती है, उत्पादन एवं स्वास्थ्य की कमजोरी को दूर करने के लिए पशुपालक को अपने पशुओं को अधिक मात्रा में राशन देना पड़ता है। इस कारण से पशु की उत्पादन लागत बढ़ जाती है और पशु से मिलने वाले लाभ में कमी आ जाती है। इन विपरीत परिस्थितियों में हमारे पशुओं में साइलेज (संरक्षित चारा) का उपयोग बढ़ जाता है। पशुपालक इसके उपयोग से अपने पशु के स्वास्थ्य एवं उसकी उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं और उत्पादन लागत को कम कर सकते हैं।

साइलेज क्या है ?

हरे चारे को हवा की अनुपस्थिति में गड्ढ़े के अन्दर रसदार परिरक्षित अवस्था में रखने से चारे में लैक्टिक अम्ल बनता है जो हरे चारे का पी.एच. मान कम कर देता है तथा हरे चारे को सुरक्षित रखता है। इस सुरक्षित चारे को हम साइलेज कहते हैं। आमतौर पर हमारे पशुपालक पशु के चारे के रूप में भूसा एवं पुआल का प्रयोग करते हैं जो साइलेज की तुलना में कम गुणवत्ता वाला होता है क्योंकि भूसा एवं पुआल में प्रोटीन, खनिज लवण एवं उर्जा की मात्रा कम होती है। परन्तु पशुपालक इनका उपयोग साइलेज में करके इनकी पोषकता को बढ़ा सकते हैं।

साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त फसलें

साइलेज लगभग सभी घासों से अकेले अथवा उनके मिश्रण से बनाया जाता है। जिन फसलों में घुलनशील कार्बोहाईड्रेट्स अधिक मात्रा में होता है जैसे कि मक्का, ज्वार, जौ, जई, बाजरा, जसवंत घास, सम्पूर्णा घास, कोयम्बटूर घास, नेपिएर घास एवं गिनी घास इत्यादि सबसे उपयुक्त होती हैं क्योंकि इनमें शुष्क भाग के आधार पर 10 प्रतिशत से अधिक पानी में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। उष्ण कटिबंधीय घासें एवं दलहनी फसलों से भी साइलेज अन्य फसलों के साथ मिश्रण करके बनाया जा सकता है परन्तु इन फसलों एवं घासों में मात्र 3 से 5 प्रतिशत तक पानी में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट की मात्रा तथा नमी की अधिकता होती है। इसलिए इनका साइलेज बनाना लाभप्रद नहीं होता है परन्तु पशुपालक फसलों को अधिक कार्बोहाइड्रेट वाली फसलों के साथ मिलाकर अथवा शीरा अथवा फारमिक अम्ल

मिलाकर भी अच्छा साइलेज तैयार कर सकता है। इस प्रकिया से घासीय चारे एवं निम्नकोटि की चारा फसलों, भूसा एवं कड़वी इत्यादि के पौष्टिक तत्व विशेषत: प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है। साइलेज बनाते समय चारे में नमी की मात्रा 65 से 70 प्रतिशत होनी चाहिए। पशुपालक घास वाले चारों में आवश्यकता के अनुसार यूरिया (0.5 से 1.0 प्रतिशत) मिलाकर बनने वाले साइलेज की पौष्टिकता में वृद्धि कर सकते हैं।

साइलेज के लिए फसल कटाई की उचित अवस्था

साइलेज बनाने में फसल की कटाई का समय सबसे महत्वपूर्ण होता है। पशुपालकों को साइलेज बनाने के समय अपनी फसलों की कटाई दूधिया अवस्था पर करनी चाहिए और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस समय चारे में 65-70 प्रतिशत तक पानी हो। इस अवस्था में उस चारे में सर्वाधिक पोषक तत्व पाये जाते हैं। यदि चारे में नमी अधिक हो तो चारे को थोड़ा धूप में सुखा लेना चाहिए।

साइलेज बनाने के लिए फसलों का अनुपात :

ज्वार +लोबिया (1:1)

मक्का +लोबिया (1:1)

ज्वार + सुबबूल के पत्ते (1:1)

जई + बरसीम (1:1)

कड़वी +बरसीम (1:1)

ज्वार + लोबिया (1:1)

भूसा +लोबिया (1:1)

सूखी घास +बरसीम (5:1)

पुआल + बरसीम (5:1)

भूसा + रिजका (1:2)

साइलेज के गड्ढ़े के लिए जगह का चुनाव

साइलेज बनाने के लिए गड्ढ़ों के लिए जगह का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण होता है। गड्ढ़ों का निर्माण करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- सर्वप्रथम गड्ढ़े बनाने के लिए उँचे स्थान का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करना से गडढ़ों के अन्दर वर्षा का पानी नहीं आ पाता है।
- अगर संभव हो सके तो गड्ढ़ों का निर्माण किसी छायादार जगह पर करना चाहिए।
- भूमि में पानी का जल स्तर नीचा होना चाहिए। यदि पानी का स्तर ऊपर होगा तो उससे साइलेज में फफूंद लगने की सभांवना बनी रहती है।
- साइलेज के गड्ढ़े सदैव पशुशाला के समीप होने चाहिए।

गड्ढ़े या साइलोपिट बनाना

जिन गड्ढ़ो में साइलेज को बनाया जाता है उन्हें साइलोपिट्स कहते हैं। ये साइलोपिट्स कई प्रकार के होते हैं। ट्रेन्च साइलो बनाने में सस्ते व आसान होते हैं। साइलेज बनाने के लिए गड्ढ़ा 6 फुट गहरा तथा 5 फुट चौड़ा होना चाहिए। एक घन फुट गड्ढ़े में करीब 15 किलो हरा चारा साइलेज बनाने के लिए रखा जा सकता है। अर्थात् 45 कुंटल चारे के लिए गड्ढ़े की लम्बाई 10 फुट होनी चाहिए। इस तरह करीब 70 कुंटल चारे के लिए गड्ढ़े की लम्बाई 15 फुट होगी। एक साइलेज गड्ढ़ा जिसका माप 10×5×6 फुट हो तो उसको दो आदमी 4 से 5 दिनो में भर सकते हैं। इस आकार में बना साइलेज 15 से 20 किलोग्राम प्रतिदिन की दर से 15 से 16 पशुओं को 5 से 6 माह तक खिलाया जा सकता है। परन्तु हमारे देश के पशुपालक करीब 8 फुट गहराई वाले गड्ढ़े का प्रयोग करते हैं, इससे वे अपने 4-5 पशुओं के लिए तीन माह तक का साइलेज बना सकते हैं। पशुपालक सांइलोपिट्स बनाने के लिए स्थानीय वस्तु का प्रयोग करते हैं। पशुपालकों को साइलेज के गड्ढ़े का निर्माण ईंट व सींमेट से करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पशुपालक साइलो पिट का लम्बे समय तक उपयोग कर सकते हैं।

साइलेज बनाने की विधि

जिस चारे का साइलेज बनाना है उसे काटकर पशुपालक को कुछ समय के लिए खेत में ही थोड़ी देर के लिए सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए। जब चारे में पानी की मात्रा लगभग 65-70 प्रतिशत रह जाए तो उसकी कुट्टी बनाने वाली मशीन से छोटे-छोटे टुकड़े बना लेना चाहिए। पशुपालक छोटे गड्ढ़ो में चारे को पैरों से दबाकर भी भर सकते हैं। परन्तु बड़े स्तर पर जब साइलेज बनाया जाता है तो ट्रैक्टर या अन्य दबाने वाली मशीन का प्रयोग करना चाहिए। पशुपालकों को गड्ढ़े को तब तक भरते रहना चाहिए जब तक गड्ढे का स्तर धरातल से करीब 1 मीटर ऊपर तक न हो जाए। गड्ढ़े को चारे की सहायता से ऊपर गुम्बदाकार बना देना चाहिए और ऊपर से पोलीथीन या घास-फूस से ढ़ककर मिट्टी से लिपाई कर देनी चाहिए। ऐसा करने से बाहर का पानी एवं हवा गड्ढ़े के अंदर प्रवेश नहीं कर पाती है, जिसके कारण गड्ढ़ो के अंदर किण्वन प्रकिया शुरू हो जाती है।

अच्छे साइलेज की पहचान

एक अच्छे साइलेज का रंग हरा या सुनहरा या हल्का सोने के रंग जैसा या हरे भूरे रंग जैसा होता है। यह खाने एवं पचने में आसान होता है। साइलेज का जानवरों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। पशुपालक को खराब साइलेज अपने पशु को नहीं खिलाना चाहिए। एक अच्छे साइलेज में विशेष प्रकार की खुशबू होती है। इसका स्वाद थोड़ा तेजाबी (खट्टा) होता है। बरसीम, रिजका तथा लोबिया में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा मक्का और ज्वार की तुलना में कम होती है तथा आद्रता एवं प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है, इसीलिए इनसे स्वंतत्र रूप से साइलेज नहीं बनाया जा सकता। किन्तु चार भाग बरसीम में एक भाग धान का पुआल मिलाकर साइलेज बनाया जा सकता है। ऐसे में धान का पुआल बरसीम की नमी को सोख लेता है, जिससे बरसीम सड़ता नहीं और साथ ही पुआल में पचनीय तत्व बढ़ जाते हैं। यदि इन चारों को छोटे-छोटे टुकड़ो में काटकर एक से डेढ़ दिन तक सुखाया जाए अथवा गेहूँ के भूसे के साथ मिलाया जाए जिससे कि इन चारों की नमी की मात्रा घटकर लगभग 60 प्रतिशत हो जाए तो इससे अच्छा साइलेज बनाया जा सकता है।

गड्ढ़ों को खोलना

पशुपालकों को गड्ढ़े के भरने की तिथि को अपने पास दर्ज कर लेना चाहिए और इसे 90 से 100 दिनों के बाद ही खोलना चाहिए। गड्ढ़े को खोलते समय यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि गड्ढ़ा एक किनारे से खोला जाए और साइलेज की जितनी मात्रा की आवश्यकता हो, उतना ही बाहर निकाला जाए। साइलेज को निकालने के पश्चात् गड्ढ़े को अच्छी तरह से बंद कर देना चाहिए। गड्ढ़ों को खोलते समय यह भी देखना चाहिए कि साइलेज के ऊपरी सतह पर फफूंद न लगी हो।

पशुओं को साइलेज खिलाना

साइलेज सभी प्रकार के पशुओं को खिलाया जा सकता है। एक भाग सूखा चारा, एक भाग साइलेज मिलाकर खिलाना अच्छा रहता है। यदि हरे चारे की कमी हो तो साइलेज की मात्रा बढ़ाकर भी उपयोग कर सकते हैं। साइलेज बनाने के 30 -35 दिनों के पश्चात् पशु को खिला सकते हैं। एक सामान्य पशु को 15-20 कि.ग्रा. साइलेज प्रतिदिन खिलाया जा सकता है। दुधारू पशुओं को साइलेज दूध निकालने के बाद खिलाना चाहिए। यदि साइलेज पहले खिला देते हैं तो इसकी दुर्गन्ध दूध में आने लगती है। शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि एक अच्छे साइलेज में 85-90 प्रतिशत तक हरे चारे के बराबर पोषक तत्व होते हैं। इसलिए दुधारू पशुओं को हरे चारे की तंगी के समय पशुपालक इसका प्रयोग कर सकते हैं।

निष्कर्ष

साइलेज एक पौष्टिक संरक्षित चारा है जिसका प्रयोग हम हरे चारे की किल्लत के समय में कर सकते हैं। यह विधि प्रमुख रूप से सूखे से प्रभावित भाग में सुचारू रूप से चल रही है। पशुपालक साइलेज के उपयोग से अपने पशु की प्रतिदिन की हरे चारे की पूर्ति कर सकते हैं। इसीलिए साइलेज का पशुओं के चारे के रूप में दिन-प्रतिदिन महत्व बढ़ता जा रहा है।

भेड़-बकरियों के लिए हरे चारे की खेती

भैंरू लाल कुम्हार, अनिल कुमार शर्मा, सीमा जाट एवं गणेश बी शेन्डगें

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा-324001

भेड़ व बकरी पालन में चरागाहों का बड़ा महत्व है क्योंकि अधिकांश भेड़ और बकरियां चरागाहों पर ही पाली जाती है। इन पशुओं को चरागाह पर पालना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होता है। देश में प्राकृतिक चरागाहों की दशा अच्छी नहीं हैं। इसलिए आज पूरे देश में उन्नत चरागाह विकसित करने की आवश्यकता है, जिनमें उन्नत घास व दलहनी फसलों के बीजों को मिश्रित करके लगाया जा सकता है। उन्नत घासों में अंजन, धामण, सेवन, करड़, गिन्नी और ब्लू पेनिक आदि घासों को काम में लिया जा सकता है। दलहनी फसलों में तितली मटर, बालौर, स्ट्राइलों, अटाइलोसिया, चौला, मौठ और कुल्थी उपयुक्त हैं। चरागाह में लगाये जाने वाले चारा वृक्षों में खेजड़ी, नीम, सिरिस, बबूल, इजराइली बबूल, अरडू, मोपेन, कचनार तथा झाड़ियों में शहतूत, डाइक्रो, जीन्जा, रोहिड़ा और बेर आदि को घास तथा दलहनी फसलों के बीच कतारों में लगाया जा सकता है। हरे चारे के लिए चारा फसलों में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली फसलों जैसे-बरसीम, रिजका, जई, सेंजी, जौ, ज्वार, मक्का, बाजरा, चौला, ग्वार, मकचरी आदि फसलों की उन्नत खेती की जा सकती है। इस लेख में वर्ष की तीनों ऋतुओं में बोई जाने वाली चारा फसलों की खेती की जानकारी संक्षिप्त में दी गई है।

खरीफ की चारा फसलें

हरे चारे की खेती मुख्य रूप से खरीफ के मौसम में सबसे ज्यादा की जाती है क्योंकि इस मौसम में सिंचाई के लिए पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके अलावा वातावरण की अनुकूलता के कारण कम खाद व बीज की जरूरत पड़ती है। इस मौसम में चारा फसलों की वानस्पतिक वृद्धि भी अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण चारा भी अधिक पैदा होता है। खरीफ में मुख्य रूप से बोयी जाने वाली चारा फसलों में ज्वार, चरी, मक्का, चौला, ग्वार, मूंग, मौठ, कल्थी, तितली मटर, स्ट्राइलों तथा बालौर आदि है तथा चरागाहों में अंजन, धामण, सेवन, गिन्नी, मारवाड़ और मार्बल घास आदि की बुवाई की जा सकती है। इस मौसम में उगाई गई चारा फसलों में हानिकारक खरपतवार व कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है। बीज की मात्रा अपेक्षाकृत कम काम में ली जाती है तथा खाद व उर्वरक भी कम प्रयोग में आते हैं। नेपियर घास की एन.बी.-21, पूसा जांयट, दीनानाथ घास की इगफ्री-3808, बुन्देल-2, सिराट्रो की इगफ्री (एस-1), ग्वार की दुर्गापुरा सफेद, एफ. एस.-277 और जी-1 आदि उन्नत किस्में है। सैंजी के लिए सैंजी- 76 और एसओएस-1 आदि किस्मों की बुवाई करते हैं।

रिजका में अमर बेल का सबसे ज्यादा प्रकोप रहता है इसलिए इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत सादा नमक का घोल तैयार करके बीज को 5 मिनट तक दबाकर रखना चाहिए जिससे कि खराब बीज तैर कर ऊपर आ जायें। इसके बाद उन्हें हाथ से निकाल कर मिट्टी में दबा देना चाहिए और बाद में साफ पानी से दो-तीन बार धोकर बुवाई करें । इसके अलावा पेराक्वेट रसायन का 0.1 से 0.2 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस खर-पतवार का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है।

रबी की चारा फसलें

वर्षा ऋतु की उपलब्ध नमी में सितम्बर माह के आरम्भ में भूमि को तैयार करके चारे के बीजों की बुवाई की जाती है। बुवाई से पहले खेत में गोबर की खाद 10 टन प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में भली-भांति मिला दें। अधिक चारा हासिल करने के लिए जई और जौ में 80-100 किग्रा नत्रजन तथा 40 किग्रा फास्फोरस तथा इतना ही पोटाश काम में लावें। यदि रबी के मौसम में चारे के लिए बरसीम, रिजका (लूर्सन), कासनी, सेंजी और मेथी उगानी हो तो इसमें 20 किग्रा नत्रजन तथा 40 किग्रा फास्फोरस देने की सिफारिश की जाती है। फस्फोरस एवं पोटाश की संपूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की एक तिहाई मात्रा बुवाई के पश्चात् देनी चाहिए। ध्यान रहे, प्रत्येक कटाई के तुरन्त बाद चारा फसलों को पानी पिलाना न भूलें तथा बताई गई नत्रजन मात्रा का अवश्य प्रयोग करें इससे फूटन अथवा पुनः वृद्धि ठीक होती है। चारा फसलों की कटाई भूमि सतह से कुछ उंचाई पर (5-7 से.मी.) करनी चाहिए जिससे अधिक कल्ले निकलते हैं तथा पौधों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी

चरागाह में चराई करती बकरी

होती है। सर्दी के मौसम में सिंचाई 15–20 दिन के अन्तराल पर करें तथा गर्मी के मौसम में सिंचाई का अन्तराल 8–10 दिन का रखना चाहिए। घास कुल की फसलों में बीज की मात्रा 20–25 किग्रा प्रति हैक्टर रखना चाहिए। फलीदार व घास के बीजों को मिश्रित करके मिलवां खेती करते समय इसके बीज की मात्रा घटाकर आधी कर देनी चाहिए। घास कुल की चारा फसलों की बीज दर 50–60 किग्रा तथा दलहन चारा फसलों की 10–12 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहती है। घास व दलहनी फसलों के बीजों को मिश्रित करके बोने से न केवल चारा अधिक प्राप्त होता है बल्कि पोषक तत्व भी अधिक मात्रा में मिलते हैं। इन बीजों की बुवाई 20–25 सेमी चौड़ी कतारों में 2–3 सेमी की गहराई पर करनी चाहिए। शीघ्र चारा प्राप्त करने के उद्देश्य से बरसीम, रिजका, जई, जौ और कासनी के साथ 272.5 किग्रा सरसों का बीज या मेथी या चाईनीज कैबेज भी मिलाना चाहिए क्योंकि इन सभी की बढ़वार तेजी से होती है। उन्नत प्रजातियों में बरसीम की बरदान, जेवी–1, बीएल–2 तथा लूसर्न की टी–9, चेतक, आनन्द–2, जई की कंट, इगफ्री–2688, जेएसओ–817 तथा ओएस–6, ओएस–8 और यूपीऔ–94 आदि किस्मों की बुवाई की जाती है। जौ की आरडी–2508, आरडी–2552 प्रजातियां प्रसिद्ध हैं।

बीज उपचार के लिए राइजोबियम कल्चर के 4 पेकेट/हैक्टर काफी रहता है। फास्फोरस को अधिक घुलनशील बनाने के उद्देश्य से पीएसबी कल्चर का प्रयोग अवश्य करें। चारा फसलों की प्रथम कटाई बुवाई के 55–56 दिन पश्चात् करनी चाहिए तथा बाद की कटाई 40 से 45 दिन बाद लेवें। रबी चारा फसलों में जौ तथा जई की पैदावार 300–350 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तथा बरसीम और लूसर्न से क्रमशः 700–800 व 800–1000 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक हरा चारा लिया जा सकता है।

जायद की चारा फसलें

गर्मी के दिनों के लिए मक्का, लोबिया तथा संकर ज्वार आदि की बुवाई करनी चाहिए। गर्मी के मौसम की कुछ खास किस्म होती है जिनकी बुवाई करना लाभदायक है। अधिक चारा लेने के लिए मक्का की गंगा –2, जिया और अफ्रीकन टॉल, लोबिया की रसियन जाईन्ट, यूपीसी–5286, यूपीसी–8705 और यूपीसी– 9202 अच्छी प्रजातियां है। चरी की कुछ प्रजातियों से कई कटाई प्राप्त की जा सकती हैं जैसे एमपी चरी, पूसा चरी–23 व पाईनियर की संकर किस्में आदि। बीज की मात्रा गर्मी में बोई जाने वाली फसलों में मक्का के लिए 40 कि.ग्रा. लोबिया के लिए 35 कि.ग्रा. तथा चरी के लिए 20–25 कि.ग्रा. पर्याप्त रहती है। मक्का की बुवाई 20–30 से.मी. लोबिया व बहुकटाई वाली ज्वार चरी की बुवाई 30–35 से.मी. चौड़ी कतारों में करते हैं। दलहनी चारा फसलों में 20 किग्रा नत्रजन तथा 40 कि.ग्रा. फास्फोरस की आवश्यकता पड़ती है।

चरागाह

अन्य पशुओं की तुलना में भेड़- बकरी चरागाहों का अच्छा उपयोग करती हैं। छोटे पशुओं को चरागाहों पर पालना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होता है। हमारे देश में अच्छे चरागाह की कमी है और जो चरागाह हैं उनकी उत्पादन क्षमता तथा पौष्टिकता भी कम होती है। हमारे देश में चरागाहों के विकास पर ध्यान न के बराबर दिया जाता है, जो हैं उनको मनुष्य अपने लिये खेती योग्य बनाते जा रहे हैं, जिससे चरागाहों की कमी होती जा रही है।

चरागाहों की वर्तमान स्थिति बड़ी खराब है जिसका कारण अनियंत्रित चराई एवं उचित प्रबंधन का अभाव है। मैदानी क्षेत्रों में चरागाहों के लिए भूमि उपलब्ध नहीं है। पहाड़ी तथा बंजर पड़ी भूमि पर भेड़-बकरियों के लिए चारागाहों का विकास किया जा सकता है। चरागाहों में क्षमता से अधिक पशुओं को नहीं चराना चाहिए । जब तक ठीक प्रकार से चरागाह चराई पर पशुओं का नियंत्रण न हो तब तक चरागाह का सुधार असंभव है। इसके लिये चरागाहों की घेराबन्दी कंटीले तारों से कर देनी चाहिए तथा इनको चार बराबर भागों में बांट कर नियंत्रित चराई करनी चाहिए। चरागाह में शहतूत, नीम, बेर, झरबेरी, पीपल, बबूल, खेजड़ी, खैर, अरडू, ककेड़ा आदि चारा वृक्षों का होना आवश्यक है। यह थ्री- टीयर किस्म का होना चाहिए अर्थात चरागाह में उचित मात्रा में घास, झाड़ियां व वृक्षों का समावेश होना चाहिए जिससे भेड़-बकरियों को वर्ष भर हरे-चारे की प्राप्ति होती रहे।

चरागाहों में पेड़ों का उगाना अति आवश्यक है। चारे की कमी के दिनों में भेड़- बकरियों को वृक्षों की पत्तियां खाने को मिल सकें और उनकी गर्मी व वर्षा आदि से रक्षा हो सके। उन्नत चरागाह में अरडू, खेजडी, बबूल, केकड़ा, खैर, बेर सर्वोत्तम सिद्ध हुए हैं। वृक्षों की पत्तियां वर्ष में दो बार नवम्बर-दिसम्बर और अप्रेल- मई में काटी जा सकती हैं। समुचित चराई उपलब्ध होने पर पत्तियों को सुखाकर गर्मियों में चारे की कमी के दिनों के लिये रख लेना चाहिए। चरागाह के लिए एक हैक्टर में 80-100 पेड़ लगाने चाहिए तथा पेड़ से पेड़ की दूरी 10 मीटर होनी चाहिए । चरने वाली भेड़-बकरियों से रक्षा के लिये वृक्षों के चारों और झाड़ियों या तार का घेरा बना देना चाहिए, ताकि पौधें की जड़ें मजबूती से पकड़ बना सकें।

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

ISSN 0976 - 4569

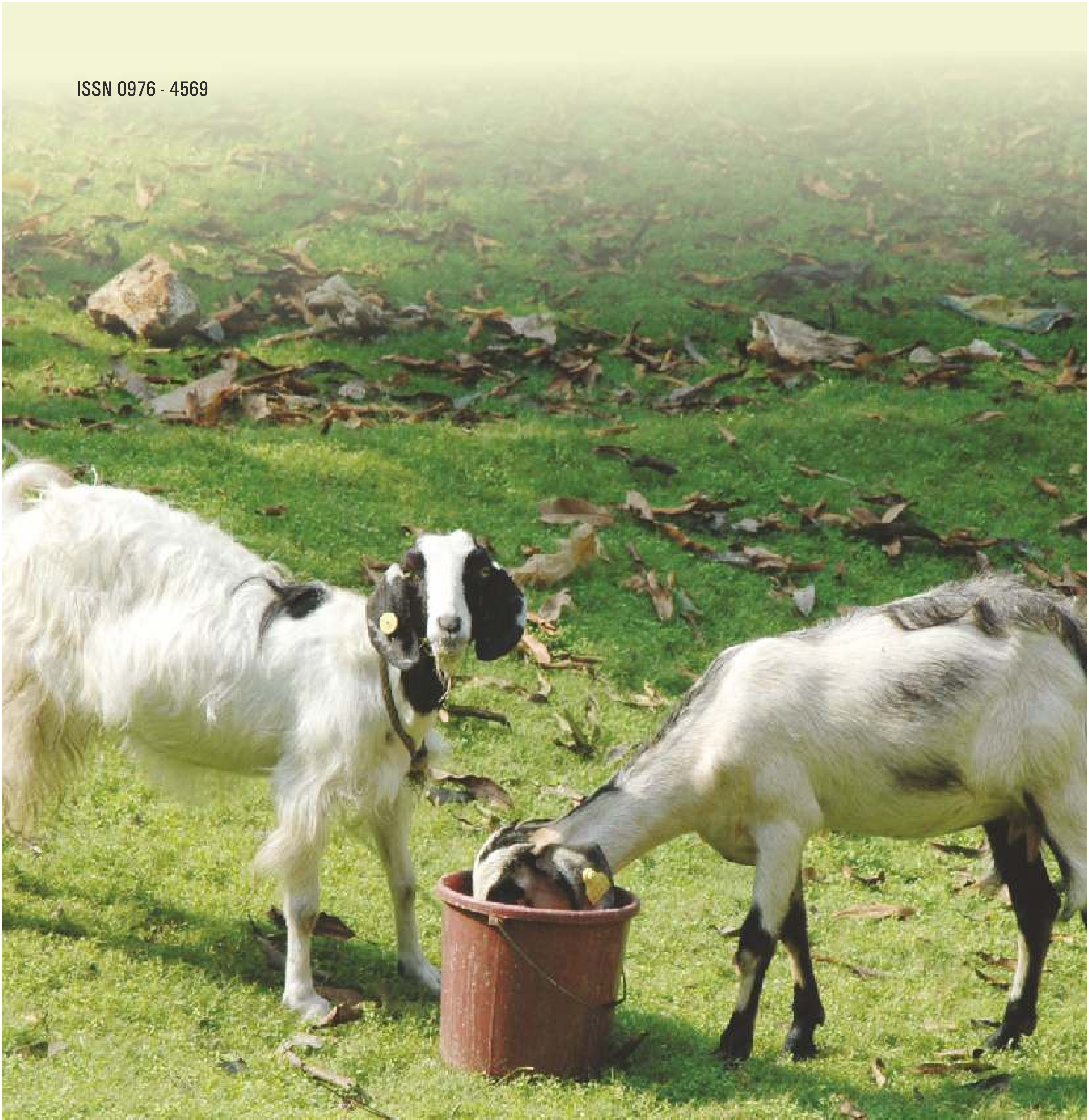

भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. - 129, करनाल - 132 001 (हरियाणा)
दूरभाष : 0184-2267918, फैक्स : 0184-2267654
ईमेल : directornbagr@gmail.com; director.nbagr@icar.gov.in
http://www.nbagr.res.in